वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 449
ISBN-978-93-84003-58-6

चैत्यभक्ति

अपरनाम

जयति भगवान् स्तोत्र

श्री गौतम स्वामी प्रणीत

(श्री प्रभाचन्द्राचार्य कृत संस्कृत टीका सहित)

–संकलन एवं पद्यानुवाद –

जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी, परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि

श्री ज्ञानमती माताजी

परमपूज्य चारित्रचन्द्रिका गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा घोषित
'श्री गौतम गणधर वर्ष' वीर नि. सं. 2540-41 सन् 2014-2015
के अन्तर्गत प्रकाशित

-प्रकाशक-

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान

जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.फोन नं.- (01233) 280184, 280994
Website : www.jambudweep.org www.encyclopediaofjainism.com
E-mail : jambudweeptirth@gmail.com
Facebook : jaintirthjambudweep

प्रथम संस्करण	वीर नि. सं. 2541, मगसिर शु. 14	मूल्य
1100 प्रतियाँ	5 दिसम्बर 2014	20/-रु.

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएँ भी प्रकाशित होती रहती हैं।

–: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :–

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

(दो बार डी.लिट्. की मानद उपाधि से अलंकृत)

–: मार्गदर्शन :–

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी

(पीएच.डी. की मानद उपाधि से अलंकृत)

–: निर्देशक एवं सम्पादक:–

कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी

–: प्रबंध सम्पादक :–

जीवन प्रकाश जैन

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

कम्पोजिंग - ज्ञानमती नेटवर्क
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

विषयानुक्रमणिका

क्र.सं.	प्रस्तावना विषय सूची	पृष्ठ सं.
1.	सम्पादकीय	4
2.	आद्य वक्तव्य	5
3.	प्रस्तावना	7
4.	दो शब्द	8
5.	श्री गौतमस्वामी का परिचय	9
6.	श्री गौतम स्वामी प्रणीत कृतियों का परिचय	10
7.	पं. श्री लालाराम जी ने चैत्यभक्ति के विषय में उद्गार	12
8.	पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी का परिचय	14
9.	संस्थान का परिचय	15
10.	श्री गौतमस्वामी प्रणीत चैत्यभक्ति के विषय में	16

ग्रंथ विषय सूची

1.	चैत्यभक्ति अपरनाम जयति भगवान् स्तोत्र (पद्यानुवाद एवं अर्थ सहित)	1
2.	चैत्यभक्ति अपरनाम जयति भगवान् स्तोत्र (श्री प्रभाचन्द्राचार्य विरचित संस्कृत टीका एवं हिन्दी टीका सहित)	15
3.	प्रशस्ति	44
4.	समवसरण वंदना	45
5.	चैत्यवन्दनाष्टक	47

सम्पादकीय

-पीठाधीश स्वस्ति श्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामी

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुंदकुंदाद्यौ, जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्।।

भगवान महावीर स्वामी हम सभी का मंगल करें। श्री गौतम गणधर स्वामी हम सभी का मंगल करें। श्री कुंदकुंद आदि पूर्वाचार्य हम सभी का मंगल करें और जैनधर्म हम सभी के लिए मंगलकारी होवे।

इस एक मंगलाचरण में श्री महावीर स्वामी से लेकर परम्परागत सभी पूर्वाचार्यों की स्तुति की गई है। आज हम सभी का परम सौभाग्य है कि हमें भगवान महावीर की साक्षात् वाणी को पढ़ने-सुनने का सौभाग्य प्राप्त हो रहा है। तीर्थंकर की परम्परा, गणधर की परम्परा, चतुर्विध संघ-मुनि-आर्यिका, क्षुल्लक-क्षुल्लिका (श्रावक-श्राविका) की परम्परा अनादि है। यह अनादि काल से चली आ रही है और अनंतकाल तक चलती रहेगी।

वर्तमान में बीसवीं शताब्दी में परम पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी का हम सभी पर परम उपकार हैं, जो कि हमें नित्य नई-नई बातों से, प्राचीन रहस्यों से अवगत कराती हैं। इनके जीवन का हरपल नई-नई कृतियों को, नई-नई रचनाओं को लिए रहता है। जिनकी लेखनी में, वाणी में सरस्वती का वास है तभी तो षट्खण्डागम सूत्र ग्रंथ की 16 पुस्तकों पर संस्कृत टीका लिखकर जैनसमाज को एक महान कृति प्रदान की है। अष्टसहस्री जैसे क्लिष्ट ग्रंथ का हिन्दी अनुवाद किया है। 400 ग्रंथों की रचना की है। जिनमें अभी कई ग्रंथ अप्रकाशित हैं। आज सारे विश्व में जिनके द्वारा रचित इन्द्रध्वज, कल्पद्रुम, सर्वतोभद्र आदि विधानों की धूम मची है।

जिन्होंने चारों अनुयोगों का तलस्पर्शी ज्ञान प्राप्त करके जैन भूगोल-जम्बूद्वीप, तेरहद्वीप एवं तीनलोक की रचना को धरती पर साकार किया है। जिनकी प्रेरणा एवं आशीर्वाद से मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र पर 108 फुट उत्तुंग ऋषभदेव की प्रतिमा का निर्माण कार्य तेजी से चल रहा है। भगवान का चेहरा पूर्णरूप से बन गया है आधी प्रतिमा बन चुकी है। वीर नि. सं. 2540, आश्विन शुक्ला पूर्णिमा, शरदपूर्णिमा 8 अक्टूबर 2014 को पूज्य माताजी के मुखारविन्द से मांगीतुंगी में बन रही 108 फुट की ऋषभदेव प्रतिमा की वीर नि. सं. 2542 माघ शु. तृतीया से दशमी, दिनांक 11 फरवरी से 17 फरवरी 2016 तक अंतर्राष्ट्रीय पंचकल्याणक प्रतिष्ठा एवं महामस्तकाभिषेक महोत्सव की घोषणा भी हो चुकी है।

प्रस्तुत पुस्तक 'चैत्यभक्ति अपरनाम जयति भगवान् स्तोत्र' एक अनुपम कृति है। इसमें श्री गौतमस्वामी के मुख से निकली संस्कृत भाषा में चैत्यभक्ति उसका पद्यानुवाद, अर्थ एवं संस्कृत टीका का संकलन है। जिनवाणीरूपी अमृत का पान कराने वाली यह 'चैत्यभक्ति' आप सभी के जीवन में मंगलकारी हो, यही मंगल भावना है। वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला दिन दूनी रात चौगुनी वृद्धि करे, यही जिनेन्द्रदेव से मंगल प्रार्थना है।

आद्य वक्तव्य

चैत्यभक्ति अपरनाम जयति भगवान् स्तोत्र

–गणिनी आर्यिका ज्ञानमती

भगवान महावीर स्वामी का साक्षात् दर्शन कर श्री गौतमस्वामी भक्ति में गद्गद् हो **'जयति भगवान्'** शब्द का उच्चारण करके प्रभु के चरणों की वन्दना करते हुए कहते हैं–**''हेमाम्भोजप्रचार– विजृंभितौ''**

हे भगवन् ! आपके चरण कमलों के नीचे देवगण स्वर्णमयी दिव्य कमलों की रचना करते जाते हैं। इस विशेषण से केवलज्ञानी प्रभु के श्रीविहार का वैभव प्रदर्शित किया है। भगवान का श्रीविहार आकाश में अधर—पृथ्वी से पांच सौ धनुष—दो हजार हाथ ऊपर होता है। भगवान के श्रीचरणों के नीचे देवगण 125 कमलों की रचना करते रहते हैं फिर भी भगवान उन पर भी चार अंगुल अधर ही पैर रखते हैं। यह प्रभु की गमन–विहार क्रिया स्वभाव से ही होती है न कि इच्छा से, क्योंकि प्रभु के मोहनीय कर्म का अभाव—विनाश हो जाने से उनका विहार व दिव्यध्वनि में बोलना, समवसरण में बैठना आदि क्रियायें स्वभाव से ही होती हैं।

द्वितीय चरण में—**''अमरमुकुटच्छायोद्गीर्णप्रभापरिचुम्बितौ।''**

हे भगवन् ! आपके श्रीचरणों में समस्त इंद्रगण मुकुट झुकाकर—चरणों में मस्तक रखकर नमस्कार करते हैं उस समय उनके मुकुटों में लगी हुई रत्नों की किरणें प्रभु के चरणों का स्पर्श करती हैं। इस विशेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि—प्रभु के चरणों को तीनों लोकों के सभी इन्द्र—सौ इंद्र असंख्य देवपरिवारों के साथ नमस्कार करते हैं। भगवान के चरण कमल तीनों लोकों के जीवों से वंदनीय है।

तृतीय चरण में व चतुर्थ चरण में—

कलुषहृदया मानोद्भ्रान्ताः परस्परवैरिणः।
विगतकलुषाः पादौ यस्य प्रपद्य विशश्वसुः।।1।।

कलुषितमना मान से उन्मत्त हुये, जन्मजात, परस्पर में वैरी ऐसे मनुष्य व पशुगण सभी आपके चरणों का आश्रय लेकर वैरभाव को छोड़कर आपस में विश्वास को—परमप्रीति को प्राप्त कर लेते हैं।

इस विशेषण से भगवान के समवसरण का माहात्म्य प्रगट किया गया है।

भगवान के समवसरण में बारह सभाओं में असंख्य देव, देवियां व संख्यातों मनुष्य तथा तिर्यंच सभी परस्पर के वैरभाव को छोड़कर परमप्रीति को प्राप्त कर भगवान का दिव्य उपदेशामृत पान करते हैं। इसी हेतु से जैनशासन में सिंह और

गाय एक घाट पानी पीते हुये दिखाये जाते हैं।

अनंतर श्री गौतमस्वामी ने चौथे काव्य से लेकर 10 तक छह काव्यों में नवदेवों का वर्णन किया है–

अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु ये पांच महापुरुष–पांच परमेष्ठी हैं। पुनश्च–जिनधर्म, जिनागम, जिनचैत्य और चैत्यालय ये चार श्री गौतमस्वामी द्वारा नमस्कार किये गये हैं।

पुनः 11 वें पद्य से लेकर 15 वें पद्य तक अकृत्रिम और कृत्रिम जिनप्रतिमाओं की वंदना की है।

अनंतर तीनों लोकों के समस्त अकृत्रिम व कृत्रिम जिनमंदिर व जिनप्रतिमाओं की वन्दना की है। इसमें चारों प्रकार के देवों के यहाँ जो तीनों लोकों में जिनमंदिर व जिनप्रतिमायें हैं, उन सभी की वन्दना के साथ–साथ मध्यलोक के कृत्रिम व अकृत्रिम जिनचैत्यों की वंदना की है अर्थात् अधोलोक के भवनवासी देवों के जिनचैत्यों की, मध्यलोक के कृत्रिम–अकृत्रिम जिनमंदिर व प्रतिमाओं की तथा मध्यलोक में ही व्यंतर व ज्योतिषी देवों के जिनबिंबों की पुनश्च वैमानिक देव—ऊर्ध्वलोक के सभी जिनमंदिरों की वंदना करके यह स्पष्ट किया है कि–जिनप्रतिमाओं की वन्दना से केवल पुण्यास्रव होता है इतना ही नहीं है प्रत्युत–**''चैत्यानां संकीर्तिः सर्वास्रवनिरोधिनी''** यह जिनप्रतिमाओं की स्तुति संपूर्ण आस्रव को रोकने वाली अर्थात् पूर्ण संवर कराने वाली होवे है।

यह संपूर्ण चतुर्निकाय देवों के व मध्यलोक के चैत्य– चैत्यालयों की वंदना–पद्य 16 से 22 तक 7 पद्यों में बहुत ही सुंदर है।

अनंतर काव्य 23 से 30 तक 8 काव्यों में अर्हंतदेव को महानद–महातीर्थ बनाकर उसमें स्नान की बात कही है तथा स्वयं श्रीगौतमस्वामी ने कहा है कि हे प्रभो ! मैं इस महातीर्थ में स्नान हेतु उतरा हूँ मेरे भी समस्त दुरित–पापों को व कर्मों को दूर कीजिये।

यह प्रकरण बहुत रोचक है।

पुनश्च काव्य 31 से 35 तक 5 काव्यों में भगवान की वीतराग मुद्रा का बहुत ही विशेष वर्णन किया है।

अनंतर अंचलिका में संपूर्ण कृत्रिम–अकृत्रिम जिनचैत्य, चैत्यालयों की वंदना की है।

भावार्थ—इस प्रकार संक्षेप में इस चैत्यभक्ति में नवदेवों की वन्दना, कृत्रिम–अकृत्रिम जिनचैत्यालयों की विशेष वन्दना व अर्हंतरूपी महातीर्थ में अवगाहन–स्नान की बातें कही गई हैं। संक्षेप से समय के अनुसार इनका विवेचन करना चाहिए।

प्रस्तावना

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

जैनधर्म के चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी के प्रथम गणधर श्री गौतमस्वामी हुए हैं। चूँकि यह नियम है कि गणधर के अभाव में तीर्थंकर की दिव्यध्वनि नहीं खिरती अतः भगवान महावीर स्वामी को जब केवलज्ञान होने के 66 दिन तक दिव्यध्वनि नहीं खिरी तब सौधर्म इन्द्र को चिन्ता हुई तब वे वेश बदलकर वेद-वंदागों में पारगंत ब्राह्मण श्री इन्द्रभूति गौतम के पास गए और उनसे प्रश्न किया-कि मुझे एक श्लोक का अर्थ समझ में नहीं आ रहा है, मेरे स्वामी इस समय मौन हैं, अतः आप उसका अर्थ बताएँ। तब गौतम गोत्रीय इन्द्रभूति ने कहा—आप अपना श्लोक बताइए मैं उसका अर्थ करूँगा। सौधर्म इन्द्र ने श्लोक पढ़ा-

''धर्मद्वयं त्रिविधकालसमग्रकर्म, षड्द्रव्यकायसहिताः समयैश्च लेश्याः।
तत्त्वानि संयमगती सहितं पदार्थै-रंगप्रवेदमनिशं वद चास्तिकायं।।''

श्री इन्द्रभूति ब्राह्मण को उसका अर्थ समझ में नहीं बताया, तब उन्होंने कहा चलो मैं तुम्हारे गुरु के सामने ही इसका अर्थ बताऊँगा। इन्द्र तो यही चाहते थे उन्होंने कहा-ठीक है और वे उन्हें भगवान महावीर के समवसरण में ले गए जहाँ पर सर्वप्रथम मानस्तम्भ का दर्शन करते ही उनका मान गलित हो गया। उनका मिथ्याज्ञान सम्यग्ज्ञान में परिवर्तित हो गया। समवसरण में भगवान महावीर स्वामी का दर्शन करते ही उनके मुख से सर्वप्रथम भगवान के गुणगान में चैत्यभक्ति प्रस्फुटित हुई-

जयति भगवान् ! हेमाम्भोज-प्रचार-विजृंभिता।
वमरमुकुटच्छायोद्-गीर्णप्रभापरिचुम्बितौ।।

इत्यादि रूप से 35 श्लोकों में स्तुति की है। उन्होंने भगवान महावीर स्वामी के समवसरण में दीक्षा ले ली, उसी समय उन्हें अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान प्रगट हो गया और वे भगवान के प्रथम गणधर हो गए। वह दिन श्रावण कृष्णा एकम् का था, बस भगवान की दिव्यध्वनि खिरने लगी जिसे श्री गौतम गणधर स्वामी ने गूंथा, उसे अन्तर्मुहूर्त अर्थात् 48 मि. के अन्दर द्वादशांगरूप में रचना कर दी। भगवान महावीर अर्थकर्ता और श्री गौतम गणधर स्वामी ग्रंथकर्ता माने गए हैं। आज जितना भी उपलब्ध शास्त्र है सब द्वादशांग का अंशरूप है।

प्रस्तुत पुस्तक 'चैत्यभक्ति अपरनाम जयति भगवान् स्तोत्र' में जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी चारित्रचन्द्रिका, दिव्यशक्ति, युगप्रवर्तिका आर्यिकाशिरोमणि परमपूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने चैत्यभक्ति का पद्यानुवाद एवं संकलन किया है। इसमें चैत्यभक्ति का हिन्दी अनुवाद पं. श्री पन्नालाल जी सोनी सिद्धान्तशास्त्री-ब्यावर द्वारा अनुवादित 'यतिप्रतिक्रमण' पुस्तक से और संस्कृत टीका श्री प्रभाचन्द्राचार्य द्वारा विरचित लिया है। इस स्तोत्र को पढ़कर और उसका अर्थ हृदयंगम करके सभी भव्य जीव मोक्षमार्ग को प्रशस्त करें, यही मंगल भावना है।

पूज्य माताजी दीर्घायु हों, स्वस्थ रहें और हम सभी को दीर्घ समय तक अपनी अमृतमयी वाणी से सिंचित करती रहें, यही जिनेन्द्रदेव से मंगल प्रार्थना है।

दो शब्द

-आर्यिका सुव्रतमती (संघस्थ)

मंगलं स्यान्महावीरो, श्री गौतमश्च मंगलम्।
जिन शासनमाचंद्रं, स्थेयात् कुर्याच्च मंगलम्।।

भगवान महावीर के शासनकाल में बीसवीं सदी में मुनि परम्परा को जीवन्त करने वाले युगप्रवर्तक चारित्रचक्रवर्ती प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज हुए हैं। उनके 3 बार दर्शन करने वाली एवं उनसे अनुभव ज्ञान प्राप्त करने वाली और उनके प्रथम पट्टशिष्य चारित्र चूड़ामणि आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के करकमलों से आर्यिका दीक्षा को प्राप्त करने वाली, जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी, वर्तमान में पीछीधारी सभी साधुओं में सबसे प्राचीन दीक्षित, परम पूज्य 105 गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी हैं, जिन्होंने जिनधर्म, जिनागम की विशेष प्रभावना की है। प्रतिक्षण पूज्य माताजी की यह भावना रहती है कि किस तरह से मैं वर्तमान में सभी भव्य जीवों को आगम के ज्ञान से, पूर्वाचार्यों की वाणी से सिंचित करूँ।

सच्चे ज्ञान की प्राप्ति धर्म गुरुओं से सहज ही हो जाती है जैसा कि श्री पूज्यपाद स्वामी ने इष्टोपदेश में कहा है-

अज्ञानोपास्तिरज्ञानं, ज्ञानं ज्ञानि समाश्रयः।
ददाति यत्तु यस्यास्ति, सुप्रसिद्धमिदं वचः।।

अर्थात् अज्ञानी की उपासना-संगति से प्राणी अज्ञान प्राप्त करता है तथा ज्ञानी की उपासना से ज्ञान प्राप्त करता है, क्योंकि 'जिसके पास जो कुछ है वह वही वस्तु प्रदान करता है' यह सुप्रसिद्ध वचन है।

किसी भी शास्त्र को पढ़ते समय यदि अर्थ समझ में नहीं आता है तो पूज्य माताजी कहती हैं कि मेरे गुरू आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज कहा करते थे-

'पठितव्यं खलु पठितव्यं अग्रे अग्रे स्पष्टं भविष्यति' अर्थात् हमेशा पढ़ते रहो-पढ़ते रहो, आगे-आगे विषय स्पष्ट होगा। जैसे श्रावक की दैनिक षट् क्रियाओं में स्वाध्याय एक क्रिया है, उसी प्रकार मुनियों के 6 अंतरंग तपों में स्वाध्याय नाम का एक तप है। कहा भी है-**'स्वाध्यायः परमं तपः।'**

यह 'चैत्यभक्ति अपरनाम जयति भगवान् स्तोत्र' का पद्यानुवाद एवं संकलन करके पूज्य माताजी ने जैन समाज पर महान उपकार किया है। श्री गौतम स्वामी के मुखारविन्द से निकली वाणी, चतुर्थकाल की वाणी को पढ़कर और उसे हृदयंगम कर हम अपने सम्यग्दर्शन को शुद्ध करें और परम्परा से एक दिन मोक्ष पद को प्राप्त करें। इन्हीं मंगल भावनाओं के साथ पूज्य माताजी के पावन चरणों में कोटिशः नमन।

श्री गौतमस्वामी का जीवन परिचय

-ब्र. कु. बीना जैन (संघस्थ)

आर्यखंड में एक ब्राह्मण नाम का नगर था। वहाँ एक शांडिल्य नाम का ब्राह्मण रहता था। उसकी भार्या का नाम स्थंडिला था, वह ब्राह्मणी बहुत ही सुन्दर और सर्व गुणों की खान थी। इस दम्पत्ति के बड़े पुत्र के जन्म के समय ही ज्योतिषी ने कहा था कि यह गौतम समस्त विद्याओं का स्वामी होगा। उसी स्थंडिला ब्राह्मणी ने द्वितीय गार्ग्य पुत्र को जन्म दिया था, वह भी सर्वकला में पारंगत था, इन्हीं ब्राह्मण की दूसरी पत्नी केशरी के पुत्र का नाम भार्गव था। इस प्रकार ये तीनों भाई सर्व वेद-वेदांग के ज्ञाता थे। इन तीनों भाइयों के इन्द्रभूति, अग्निभूति और वायुभूति नाम भी प्रसिद्ध हैं। वह गौतम ब्राह्मण किसी ब्रह्मशाला में पाँच सौ शिष्यों का उपाध्याय था। "मैं चौदह महाविद्याओं का पारगामी हूँ, मेरे सिवाय कोई और विद्वान नहीं है।" ऐसा अभिमानी था।

भगवान् महावीर को केवलज्ञान प्रगट होकर समवसरण की रचना हो चुकी थी, किन्तु दिव्यध्वनि नहीं खिर रही थी। 66 दिन व्यतीत हो गये। तभी सौधर्म इन्द्र ने समवसरण में गणधर का अभाव समझकर अपने अवधिज्ञान से "गौतम" को इस योग्य जानकर वृद्ध का रूप बनाया और वहाँ गौतमशाला में पहुँचकर कहते हैं-

"मेरे गुरु इस समय ध्यान में होने से मौन हैं अतः मैं आपके पास इस श्लोक का अर्थ समझने आया हूँ।" गौतम ने विद्या के गर्व से गर्विष्ठ हो पूछा-"यदि मैं इसका अर्थ बता दूंगा तो तुम क्या दोगे ?" तब वृद्ध ने कहा-यदि आप इसका अर्थ कर देंगे, तो मैं सब लोगों के सामने आपका शिष्य हो जाऊंगा और यदि आप अर्थ न बता सके तो इन सब विद्यार्थियों और अपने दोनों भाइयों के साथ आप मेरे गुरु के शिष्य बन जाना।" महा अभिमानी गौतम ने यह शर्त मंजूर कर ली, क्योंकि वह समझता था कि मेरे से अधिक विद्वान इस भूतल पर कोई है ही नहीं। तब वृद्ध ने यह काव्य पढ़ा-

"धर्मद्वयं त्रिविधकालसमग्रकर्म, षड्द्रव्यकायसहिताः समयैश्च लेश्याः।
तत्त्वानि संयमगती सहितं पदार्थै-रंगप्रवेदमनिशं वद चास्तिकायं।।"

तब गौतम ने कुछ देर सोचकर कहा-"अरे ब्राह्मण! तू अपने गुरु के पास ही चल। वहीं मैं इसका अर्थ बताकर तेरे गुरु के साथ वाद-विवाद करूँगा।" इन्द्र तो चाहता ही यह था, वह वृद्ध वेधषारी इन्द्र गौतम को समवसरण में ले आया।

वहाँ मानस्तंभ को देखते ही गौतम का मान गलित हो गया और उसे सम्यक्त्व प्रगट हो गया। गौतम ने अनेक स्तुति करते हुए भगवान् के चरणों को नमस्कार किया तथा अपने पाँच सौ शिष्यों और दोनों भाइयों के साथ भगवान् के पादमूल में जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर ली। अन्तर्मुहूर्त में ही प्रथम गणधर हो गये।

श्री गौतमस्वामी प्रणीत कृतियों का परिचय

1. **चैत्यभक्ति—**श्रीगौतमस्वामी के मुखकमल से विनिर्गत है।

2. **निषीधिका दण्डक**-इस दैवसिक प्रतिक्रमण के अन्तर्गत प्रतिक्रमण भक्ति में "निषिधिक दण्डक" आता है। इसमें प्रथम पद जो **"णमो णिसीहियाए"** है, उसका अर्थ टीकाकार ने 17 प्रकार से किया है।

इस निषीधिका दण्डक में श्रीगौतमस्वामी ने अष्टापदपर्वत, सम्मेदशिखर, चम्पापुरी, पावापुरी आदि की भी वंदना की है।

जब चारज्ञानधारी सर्वऋद्धि समन्वित गौतम गणधर इन तीर्थ क्षेत्रों की वंदना करते हैं, तब आज जो अध्यात्म की नकल करने वाला कोई यह कहे कि "यदि साधु के तीर्थ वंदना का भाव हो जाये तो उसे प्रायश्चित्त लेना चाहिए। ऐसा कथन सर्वथा अनुचित है।

3. **वीरभक्ति—**सर्वज्ञ का लक्षण, धर्म का लक्षण आदि इसमें बहुत ही महत्वपूर्ण विषय हैं।

4. **गणधरवलय मन्त्र**-बड़ा प्रतिक्रमण जो कि पाक्षिक, चातुर्मासिक और वार्षिकरूप में किया जाता है। उसकी टीका के प्रारम्भ में टीकाकार कहते हैं-

"वृहत्प्रतिक्रमणलक्षणमुपायं विदधानस्तदादौ मंगलार्थमिष्टदेवताविशेषं नमस्कुर्वन्नाह णमो जिणाणमित्यादि।।"

'श्रीगौतमस्वामी दैवसिकादिप्रतिक्रमणादिभिर्निराकर्तुमशक्यानां दोषानां निराकरणार्थं वृहत्प्रतिक्रमण-लक्षणमुपायं विदधानस्तदादौ मंगलाद्यर्थमिष्टदेवता-विशेषं नमस्कुर्वन्नाह णमो जिणाणमित्यादि"।

ये **"णमो जिणाणं, णमो ओहिजिणाणं"** आदि 48 मंत्र गणधरवलय मन्त्र कहे जाते हैं।। बृहत्प्रतिक्रमणपाठ में प्रतिक्रमणभक्ति में इनका प्रयोग है।

इन मंत्रों का मंगलाचरण धवला की नवमीं पुस्तक में है-

एवं दव्वट्ठिय जणाणुग्गहट्ठं णमोक्कारं गोदमभडारओ महाकम्म-पयडिपाहुडस्स आदिम्हि काऊण पज्जवट्ठियाणुग्गहट्ठमुत्तर सुत्ताणि भणदि।[1]

दूसरे सूत्र की उत्थानिका में विशेष स्पष्टीकरण हो रहा है।

इस प्रकार द्रव्यार्थिक नय से जनों के अनुग्रहार्थ गौतम भट्टारक महाकर्म प्रकृति प्राभृत के आदि में नमस्कार करके पर्यायार्थिक नय युक्त शिष्यों के अनुग्रहार्थ उत्तर सूत्रों को कहते हैं-

णमो ओहिजिणाणं।।2।।

ये मंत्र आदि श्रीगौतमस्वामी द्वारा रचित ही हैं। इसके लिये षट्खंडागम आदि के प्रमाण देखिये—
षट्खंडागम में ये मंत्र 44 हैं और प्रतिक्रमण पाठ में 48 हैं।

(48) णमो वड्ढमाणबुद्धरिसिस्स।।44।

वर्धमान बुद्ध ऋषि को नमस्कार हो।।44।।

शंका-जबकि वर्धमान भगवान् को पूर्व में नमस्कार किया जा चुका है तो फिर यहाँ दुबारा नमस्कार किसलिये किया गया है ?

1. धवला पुस्तक 9 पृ. 12।

समाधान— जस्संतियं धम्मपहं णिगच्छे, तस्संतियं वेणयियं पउंजे।
कायेण वाचा मणसा वि णिच्चं, सक्कारए तं सिरपंचमेण[1]।।

'जिनके समीप धर्मपथ प्राप्त हो, उनके निकट विनय का व्यवहार करना चाहिये तथा उनका सिर झुकाकर पांच अंग–पंचांग एवं काय, वचन और मन से नित्य ही सत्कार–नमस्कार करना चाहिये।' इस आचार्य परंपरागत नियम को बतलाने के लिये पुनः नमस्कार किया गया है।

प्रतिक्रमणग्रंथत्रयी में यह मंत्र ऐसा है–

णमो भयवदो महदिमहावीर वड्ढमाणबुद्धरिसिणो चेदि।

जो भगवान सहज विशिष्ट मति, श्रुत, अवधि इन तीन ज्ञान के धारी और पूजा के अतिशय को प्राप्त हैं, महतिमहावीर और वर्धमान नाम के धारक अंतिम तीर्थंकर हैं, बुद्धर्षि–प्रत्यक्षवेदी–केवलज्ञान के धारी हैं। रुद्र के द्वारा किये गये उपसर्ग को जीतने से 'महतिमहावीर' यह नाम प्रसिद्ध हुआ है। इन अंतिम तीर्थंकर के वर्धमान, वीर, महावीर, सन्मति और महतिमहावीर ऐसे पांच नाम विख्यात हैं। ऐसे वर्धमान भगवान को नमस्कार होवे।

5. **सुदं मे आउस्संतो!**—इसमें मुनिधर्म एवं श्रावक धर्म का वर्णन है।

6. **श्रावक प्रतिक्रमण**—इसमें पाक्षिक श्रावक से लेकर उत्कृष्ट श्रावक, क्षुल्लक, ऐलक तक की ग्यारह प्रतिमाओं का प्रतिक्रमण है।

7. **दैवसिक प्रतिक्रमण**—मुनि–आर्यिका आदि जिस प्रतिक्रमण को प्रतिदिन प्रातः और सायंकाल में करते हैं वह दैवसिक–रात्रिक प्रतिक्रमण है।

8. **पाक्षिक प्रतिक्रमण**—पन्द्रह दिन में होने वाला या चार महीना या वर्ष में होने वाला बड़ा प्रतिक्रमण है। अष्टमी क्रिया में होने वाली आलोचना–ये तीनों प्रतिक्रमण श्री गौतम स्वामी द्वारा रचित हैं। यह रचनायें साक्षात् उनके मुखकमल से विनिर्गत हैं।

ऐसे ही पाक्षिक प्रतिक्रमण में एक स्थल पर स्वयं श्रीगौतमस्वामी ने अपने नाम को संबोधित किया है। यथा–

जो सारो सव्वसारेसु, सो सारो एस गोदम। सारं झाणं त्ति णामेण, सव्वबुद्धेहिं देसिदं।।

श्री गौतम ! सर्वसारों में भी जो सार है वह सार 'ध्यान' इस नाम से कहा गया है ऐसा सभी सर्वज्ञ भगवंतों ने कहा है।

दैवसिक प्रतिक्रमण की टीका करते हुए श्री प्रभाचन्द्राचार्य कहते हैं–

''श्री गौतमस्वामी मुनीनां दुष्षमकाले दुष्परिणामादिभिः प्रतिदिनमुपार्जितस्य कर्मणो विशुद्ध्यर्थं प्रतिक्रमणलक्षणमुपायं विदधानस्तदादौ मंगलार्थमिष्ट-देवताविशेषं नमस्करोति–

'श्रीमते वर्धमानाय नमो'' इत्यादि।

इस उद्धरण से भी ये रचनायें श्रीगौतमस्वामी के मुखकमल से विनिर्गत हैं। ऐसा स्पष्ट हो जाता है।

1. षट्खण्डागम (धवला टीका) पु. 9 पृ. 103।

पं. श्री लालाराम जी के चैत्यभक्ति के विषय में उद्गार[1]

पूज्यवर आचार्यश्री 108 शांतिसागर जी महाराज ने अपने मुनिसंघ सहित वीर निर्वाण संवत् 2457 (सन् 1931) का चातुर्मास देहली नगर में किया था। उनके पुण्यमय दर्शन करने के लिए मैं भी देहली गया था।

उस संघ में मुनिराज श्री 108 श्रुतसागर जी भी हैं। इन समस्त मुनिराजों को इन भक्तियों से सदा काम पड़ता रहता है कितनी ही भक्तियाँ तो प्रतिदिन बोलनी पड़ती हैं तथा कितनी ही विशेष-विशेष समय पर पढ़ी जाती हैं। इन भक्तियों के पढ़ते समय यदि इनका अर्थज्ञान हो, तो फिर और भी विशेष आनन्द आता है। इसीलिए इनके अर्थ जानने की मुनिराज श्री 108 श्रुतसागर जी की प्रबल इच्छा थी। मुनियों की इच्छाएँ और प्रवृत्तियाँ सब धार्मिक ही होती हैं इसीलिए इन इच्छाओं की पूर्ति करना विशेष पुण्य का कारण समझा जाता है। यही समझकर मैंने वहाँ से आकर अपनी तुच्छ बुद्धि के अनुसार यह हिन्दी टीका लिखी है।

इन भक्तियों में अधिकतर भक्तियाँ पूज्यपाद आचार्यश्री 108 पूज्यपाद स्वामी की लिखी हुई हैं। आचार्य पूज्यपाद स्वामी कितने प्रौढ़ और प्राचीन उद्भट विद्वान् आचार्य थे, यह बात प्रायः समाज के समस्त जनसाधारण तक जानते हैं।

इन भक्तियों की एक संस्कृत टीका है जो आचार्य प्रभाचंद्र स्वामी की बनाई हुई है। उस टीका में चैत्यभक्ति की टीका के प्रारंभ में लिखा है कि—

श्री वर्द्धमानस्वामिनं प्रत्यक्षीकृत्य गौतमस्वामी ''जयति भगवान्'' इत्यादि स्तुतिमाह।

अर्थ—गौतम स्वामी ने भगवान् महावीर स्वामी के प्रत्यक्ष दर्शन कर **'जयति भगवान्'** इन शब्दों से प्रारंभ करते हुए स्तुति की।

बृहद्द्रव्यसंग्रह की संस्कृत टीका में भी लिखा है :—

ततश्च जयति भगवान् इत्यादि नमस्कारं कृत्वा जिनदीक्षां गृहीत्वा कचलोचनानन्तरमेव चतुर्ज्ञानसप्तर्द्धिसम्पन्नास्त्रयोपि (गौतम अग्निभूत वायुभूत नामानः) गणधरदेवाः संजाताः। गौतमस्वामी भव्योपकारार्थैः द्वादशांगश्रुतरचनां कृतवान्।

तदनन्तर गौतम–अग्निभूति–वायुभूति इन तीनों विद्वानों ने ''जयति भगवान्'' इत्यादि शब्दों से स्तुति करते हुए भगवान महावीर स्वामी को नमस्कार किया। जिनदीक्षा ग्रहण की और केशलोच करने के अनन्तर ही मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान चारों ज्ञान उनको प्रगट हो गये तथा सातों प्रकार की ऋद्धियाँ प्रगट हो गईं। इस प्रकार वे तीनों ही मुनि उसी समय भगवान् महावीर स्वामी के गणधर हुए। उनमें से गौतमस्वामी ने भव्य जीवों का उपकार करने के लिए द्वादशांग

1. दशभक्त्यादि संग्रह (आचार्यवर्य श्री पूज्यपाद आदि विरचित) की प्रस्तावना से पृ. 3 से 6।

श्रुतज्ञान की रचना की।

इन दोनों कथनों से यह निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि इन भक्तियों में से चैत्यभक्ति भगवान् महावीर स्वामी के मुख्य गणधर भगवान् गौतम स्वामी की बनाई हुई है। इससे इसकी प्राचीनता और प्रौढ़ प्रमाणता भी स्वयं सिद्ध हो जाती है।

इस स्तुति में कृत्रिम-अकृत्रिम चैत्यालयों का भी वर्णन है। जिसमें भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी, कल्पवासी आदि सब देवों के चैत्यालयों का तथा मध्यलोक के अकृत्रिम चैत्यालयों का भी वर्णन है। इससे सिद्ध होता है कि यह मूर्ति पूजा जैनियों ने ब्राह्मणों से नहीं ली है किन्तु अनादिकाल से चली आ रही है। जो लोग मूर्तिपूजा आदि को ब्राह्मणों से ली हुई बतलाते हैं, उनको इससे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। साथ में जो लोग जैन भूगोल को अप्रमाण और टीलों पर बैठकर लिखे हुए बतलाते हैं, उन्हें भी अपने नेत्र खोल लेना चाहिए।

इस ऊपर के कथन से यह भी सिद्ध हो जाता है कि यह चैत्यभक्ति महावीर स्वामी के केवलज्ञान के समय की बनी हुई है, अर्थात् चतुर्थकाल में जब तेतीस वर्ष साढ़े आठ महीना शेष रह गये थे, उस समय की यह रचना है। ऐसी-ऐसी चतुर्थकाल की रचनाएँ न जाने कितनी हैं, जो अज्ञानता के कारण हमें मालूम नहीं हैं। बहुत से लोग कहा करते हैं कि ''वर्तमान के समस्त शास्त्र पंचमकाल के बने हुए हैं इसलिए उनमें कहा हुआ विषय भगवान महावीर स्वामी का कहा हुआ नहीं माना जा सकता'' ऐसे लोगों को भी अनर्गल बोलना बंद कर कुछ दिन तक जानकार विद्वानों से अध्ययन करना चाहिए।

यह हिन्दी टीका मैंने संस्कृत टीका के आधार से की है। तथापि प्रमादवश या अज्ञानवश इसमें जो कुछ स्खलन हुआ हो, उसे विद्वानों को सुधार कर बाँच लेना चाहिए।

-लालाराम जैन शास्त्री, मोरेना (म.प्र.)
फाल्गुन शु. 12, वी. नि. सं. 2458
(सन् 1932)

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि

श्री ज्ञानमती माताजी का संक्षिप्त-परिचय

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

जन्मस्थान– टिकैतनगर (बाराबंकी) उ.प्र.

जन्मतिथि– आसोज सुदी 15 (शरदपूर्णिमा) वि. सं. 1991, (22 अक्टूबर सन् 1934)

जाति– अग्रवाल दि. जैन, **गोत्र–** गोयल, **नाम–** कु. मैना

माता-पिता– श्रीमती मोहिनी देवी एवं श्री छोटेलाल जैन

आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत– ई. सन् 1952, बाराबंकी में शरदपूर्णिमा के दिन

क्षुल्लिका दीक्षा– चैत्र कृ. 1, ई. सन् 1953 को महावीरजी अतिशय क्षेत्र (राज.) में आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज से। नाम-क्षुल्लिका वीरमती

आर्यिका दीक्षा– वैशाख कृ. 2, ई. सन् 1956 को माधोराजपुरा (राज.) में चारित्रचक्रवर्ती 108 आचार्य श्री शांतिसागर जी की परम्परा के प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के करकमलों से।

साहित्यिक कृतित्व– अष्टसहस्री, समयसार, नियमसार, मूलाचार, कातंत्र-व्याकरण, षट्खण्डागम आदि ग्रंथों के अनुवाद/टीकाएं एवं लगभग 300 ग्रंथों की लेखिका।

डी.लिट्. की मानद उपाधि– सन् 1995 में अवध वि.वि. (फैजाबाद) द्वारा एवं तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय मुरादाबाद द्वारा 8 अप्रैल 2012 को ''डी.लिट्.'' की मानद उपाधि से विभूषित।

तीर्थ निर्माण प्रेरणा– हस्तिनापुर में जंबूद्वीप, तेरहद्वीप, तीनलोक आदि रचनाओं के निर्माण, शाश्वत तीर्थ अयोध्या का विकास एवं जीर्णोद्धार, प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ का निर्माण, तीर्थंकर जन्मभूमियों का विकास यथा-भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा-बिहार) में 'नंद्यावर्त महल' नामक तीर्थ निर्माण, भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि काकन्दी तीर्थ (निकट गोरखपुर-उ.प्र.) का विकास, भगवान पार्श्वनाथ केवलज्ञानभूमि अहिच्छत्र तीर्थ पर तीस चौबीसी मंदिर, हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप स्थल पर भगवान शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ की 31-31 फुट उत्तुंग खड्गासन प्रतिमा, मांगीतुंगी में निर्माणाधीन 108 फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की विशाल प्रतिमा, महावीर जी तीर्थ पर महावीर धाम में पंचबालयति मंदिर, शिर्डी में ज्ञानतीर्थ, सम्मेदशिखर में आचार्य श्री शांतिसागर धाम इत्यादि।

महोत्सव प्रेरणा– पंचवर्षीय जम्बूद्वीप महामहोत्सव, भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव, अयोध्या में भगवान ऋषभदेव महाकुंभ मस्तकाभिषेक, कुण्डलपुर महोत्सव, भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव, दिल्ली में कल्पद्रुम महामण्डल विधान का ऐतिहासिक आयोजन इत्यादि। विशेषरूप से 21 दिसम्बर 2008 को जम्बूद्वीप स्थल पर विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन का आयोजन हुआ, जिसका उद्घाटन भारत की तत्कालीन राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील द्वारा किया गया।

शैक्षणिक प्रेरणा– 'जैन गणित और त्रिलोक विज्ञान' पर अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी, राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन, इतिहासकार सम्मेलन, न्यायाधीश सम्मेलन एवं अन्य अनेक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर के सेमिनार, ऑनलाइन जैन इनसाइक्लोपीडिया आदि।

रथ प्रवर्तन प्रेरणा– जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति (1982 से 1985), समवसरण श्रीविहार (1998 से 2002), महावीर ज्योति (2003-2004) का भारत भ्रमण।

इस प्रकार नित्य नूतन भावनाओं की जननी पूज्य माताजी चिरकाल तक इस वसुधा को सुशोभित करती रहें, यही मंगल कामना है।

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान-संक्षिप्त परिचय

-कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान की स्थापना पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से सन् 1972 में राजधानी दिल्ली में हुई थी। संस्थान का मुख्य कार्यालय सन् 1974 से हस्तिनापुर में प्रारंभ हुआ। इस संस्थान के अन्तर्गत अनेक गतिविधियाँ हस्तिनापुर में तथा अन्यत्र चल रही हैं-

1. सन् 1972 से वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला के अन्तर्गत प्रतिवर्ष लाखों ग्रंथ प्रकाशित हो रहे हैं।

2. सन् 1974 से इस संस्थान के मुखपत्र के रूप में 'सम्यग्ज्ञान' हिन्दी मासिक पत्रिका का निरंतर प्रकाशन हो रहा है।

3. सन् 1974 से 1985 तक हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप रचना का निर्माण कार्य हुआ।

4. सन् 1974 से अब तक जम्बूद्वीप रचना के अतिरिक्त अनेक जिनमंदिरों का निर्माण हुआ है- कमल मंदिर, तीन मूर्ति मंदिर, ध्यान मंदिर, शांतिनाथ मंदिर, वासुपूज्य मंदिर, ॐ मंदिर, सहस्रकूट मंदिर, विद्यमान बीस तीर्थंकर मंदिर, आदिनाथ मंदिर, अष्टापद मंदिर, ऋषभदेव कीर्तिस्तंभ, स्वर्णिम तेरहद्वीप रचना, तीन लोक रचना, नवग्रहशांति जिनमंदिर, चौबीस तीर्थंकर मंदिर एवं श्री शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ की 31-31 फुट उत्तुंग प्रतिमाओं की स्थापना ।

5. जम्बूद्वीप पुस्तकालय जिसमें लगभग 15000 ग्रंथ संग्रहीत हैं।

6. णमोकार महामंत्र बैंक जिसमें भक्तों द्वारा लिखकर भेजे गये करोड़ों णमोकार मंत्र जमा किये जाते हैं।

7. समय-समय पर शिक्षण-प्रशिक्षण शिविरों तथा संगोष्ठियों के आयोजन किये जाते हैं।

8. यात्रियों के शुद्ध भोजन के लिए राजा श्रेयांस भोजनालय का संचालन।

9. यात्रियों के ठहरने के लिए आधुनिक सुविधायुक्त डीलक्स फ्लैट्स वाली कई धर्मशालाओं तथा कोठियों एवं बंगलों का निर्माण किया गया है।

10. जम्बूद्वीप परिक्रमा के लिए नौका विहार, ऐरावत हाथी तथा मनोरंजन हेतु मिनी ट्रेन, झूले आदि हैं।

11. तीर्थंकर जन्मभूमियों की वंदना एवं धार्मिक फिल्मों का प्रदर्शन करने वाले थियेटर से समन्वित गणिनी ज्ञानमती हीरक जयंती एक्सप्रेस।

12. गणिनी ज्ञानमती दिगम्बर जैन पत्राचार परीक्षा केन्द्र का संचालन।

13. इंटरनेट पर जैनधर्म के इन्साइक्लोपीडिया (www.encyclopediaof jainism. com) का निर्माण।

दिल्ली, मेरठ, मुजफ्फरनगर, हरिद्वार, झाँसी, तिजारा आदि से जम्बूद्वीप स्थल तक आने के लिए दिन भर बसें मिलती रहती हैं।

दि. जैन त्रिलोक शोध संस्थान के अन्तर्गत भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा) बिहार में भव्य नंद्यावर्त महल तीर्थ, प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में निर्मित तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ तथा महावीर जी अतिशय क्षेत्र के महावीर धाम परिसर में निर्मित पंचबालयति दिगम्बर जैन मंदिर का संचालन होता है। वर्तमान में इस संस्थान के अन्तर्गत सम्मेदशिखर जी तीर्थ पर "आचार्य श्री शांतिसागर धाम" का निर्माण प्रारंभ किया जा रहा है।

जम्बूद्वीप एवं अन्य रचनाओं के दर्शन हेतु हस्तिनापुर पधारकर आध्यात्मिक एवं भौतिक सुख की प्राप्ति करें।

श्री गौतमस्वामी प्रणीत चैत्यभक्ति के विषय में

-गणिनी ज्ञानमती माताजी

आज से 2571 वर्ष पूर्व श्रावण कृष्णा एकम् को इस चैत्यभक्ति की रचना हुई है। उसी दिन श्री गौतमस्वामी ने दीक्षा लेकर गणधर पद प्राप्त किया है व उसी दिन भगवान महावीर की प्रथम दिव्यध्वनि खिरी है।

पं. लालाराम जैन शास्त्री ने भी वीर निर्वाण संवत् 2557 ईसवी सन् 1931 में चैत्यभक्ति का अनुवाद करके 'दशभक्त्यादि संग्रह' पुस्तक में आज से 84 वर्ष पूर्व ये वाक्य लिखे थे-

"चैत्यभक्ति की टीका के प्रारंभ में लिखा है कि—

श्री वर्द्धमानस्वामिनं प्रत्यक्षीकृत्य गौतमस्वामी "जयति भगवान्" इत्यादि स्तुतिमाह।

अर्थ—गौतम स्वामी ने भगवान् महावीर स्वामी के प्रत्यक्ष दर्शन कर **'जयति भगवान्'** इन शब्दों से प्रारंभ करते हुए स्तुति की।

बृहद्द्रव्यसंग्रह की संस्कृत टीका में भी लिखा है :—

ततश्च जयति भगवान् इत्यादि नमस्कारं कृत्वा जिनदीक्षां गृहीत्वा कचलोचनानन्तरमेव चतुर्ज्ञानसप्तर्द्धिसम्पन्नास्त्रयोपि (गौतम-अग्निभूत-वायुभूत-नामानः) गणधरदेवाः संजाताः। गौतमस्वामी भव्योपकारार्थैः द्वादशांगश्रुतरचनां कृतवान्।

तदनन्तर गौतम-अग्निभूति-वायुभूति इन तीनों विद्वानों ने "जयति भगवान्" इत्यादि शब्दों से स्तुति करते हुए भगवान महावीर स्वामी को नमस्कार किया। जिनदीक्षा ग्रहण की और केशलोच करने के अनन्तर ही मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान चारों ज्ञान उनको प्रगट हो गये तथा सातों प्रकार की ऋद्धियाँ प्रगट हो गईं। इस प्रकार वे तीनों ही मुनि उसी समय भगवान् महावीर स्वामी के गणधर हुए। उनमें से गौतमस्वामी ने भव्य जीवों का उपकार करने के लिए द्वादशांग श्रुतज्ञान की रचना की।

इस ऊपर के कथन से यह भी सिद्ध हो जाता है कि यह चैत्यभक्ति महावीर स्वामी के केवलज्ञान के समय की बनी हुई है अर्थात् चतुर्थकाल में जब तेतीस वर्ष साढ़े आठ महीना शेष रह गये थे, उस समय की यह रचना है। ऐसी-ऐसी चतुर्थकाल की रचनाएँ न जाने कितनी हैं, जो अज्ञानता के कारण हमें मालूम नहीं हैं।"

वर्तमान में वीर नि. सं. 2541 चल रहा है। भगवान महावीर स्वामी को निर्वाण प्राप्ति से 30 वर्ष पूर्व केवलज्ञान हुआ था, अतः आगे आने वाली श्रावण कृष्णा प्रतिपदा को इस चैत्यभक्ति के 2571 वर्ष पूर्ण होकर 2572वीं चैत्यभक्ति जयंती आयेगी।

आप प्रतिवर्ष श्रावण कृ. 1 को वीरशासन जयंती पर्व के साथ-साथ चैत्यभक्ति-जयंती पर्व भी मनाएं।

चैत्यभक्ति

अपरनाम

जयति भगवान् स्तोत्र

श्री गौतम स्वामी प्रणीत

(पद्यानुवाद एवं अर्थ सहित)

श्री गौतमस्वामी श्री वर्धमानस्वामी को प्रत्यक्ष करके 'जयति भगवान्' इत्यादि उच्चारण करते हैं–

जयति भगवान् हेमाम्भोजप्रचारविजृंभिता-
वमरमुकुटच्छायोद्गीर्णप्रभापरिचुम्बितौ ।
कलुषहृदया मानोद्भ्रान्ताःपरस्परवैरिणो
विगतकलुषाः पादौ यस्य प्रपद्य विशश्वसुः।।१।।

पद्यानुवाद

जय हे भगवन् ! चरण कमल तव, कनक कमल पर करें विहार।
इन्द्रमुकुट की कांति प्रभा से, चुंबित शोभें अति सुखकार।।
जातविरोधी कलुषमना, क्रुध मान सहित जन्तूगण भी।
ऐसे तव पद का आश्रय ले, प्रेम भाव को धरें सभी।।१।।

अर्थ—जो सुवर्णमय कमलों पर सामान्य मनुष्यों में न पाये जाने वाले और चरण क्रम के संचार से रहित प्रचार—गमन से शोभायमान हैं, देवों के मुकुटों में लगी हुई छाया-मणियों से निकलती हुई प्रभा से आलिंगित—स्पर्शित हैं ऐसे जिनके चरणों में आकर कलुष हृदय वाले, अहंकार से युक्त, परस्पर वैरी ऐसे सर्प, नेवला आदि जीव अपने-अपने स्वाभाविक क्रूर स्वभाव को छोड़कर विश्वास को प्राप्त होते हैं वे भगवान् जिनेन्द्र जयवंत रहें ।।१।।

श्रीगौतमस्वामी जिनेंद्रधर्म को नमस्कार करते हुये कहते हैं–

तदनु जयति श्रेयान् धर्मः प्रवृद्धमहोदयः
कुगति-विपथ-क्लेशाद्योऽसौ विपाशयति प्रजाः।
परिणतनयस्याङ्गीभावाद्विवित्तविकल्पितं
भवतु भवतस्त्रातृ त्रेधा जिनेन्द्रवचोऽमृतम्।।२।।

जय हो श्रेयस्कर धर्मामृत, वृद्धिंगत महिमाशाली।
कुगति कुपथ से प्राणीगण को, निकालकर दे सुख भारी।।
नय को मुख्य गौण करने से, बहुत भेदयुत सुखदाता।
ऐसे जिनवचनामृतमय, हे धर्म! करो जग से रक्षा।।२।।

अर्थ—अनन्तर उत्तमक्षमादिलक्षण श्रेष्ठ धर्म जयवंत हो, जिससे प्राणियों के स्वर्गादि पदों की प्राप्ति वृद्धि को प्राप्त होती है। जो संसारी जीवों को नरकादि कुगतियों से, मिथ्यादर्शन आदि कुमार्गों से और उनसे जायमान–उत्पन्न क्लेशों से छुड़ाता है तथा द्रव्यार्थिक नय को गौणकर पर्यायार्थिक नय की प्रधानता लेकर अङ्ग, पूर्व आदि रूप से रचा गया अथवा पूर्वापर दोषरहित रचा गया ऐसा उत्पाद–व्यय–ध्रौव्यरूप से अथवा अङ्ग, पूर्व और अंग–बाह्यरूप से तीन प्रकार का जिनेन्द्र का वचनरूप अमृत संसार से रक्षा करे।।२।।

श्री गौतमस्वामी भगवान के ज्ञान की वंदना करते हैं–

तदनु जयताज्जैनी वित्तिः प्रभंगतरंगिणी।
प्रभवविगमध्रौव्यद्रव्यस्वभावविभाविनी।।

निरुपमसुखस्येदं द्वारं विघट्य निरर्गलं।
विगतरजसं मोक्षं देयान्निरत्ययमव्ययम्।।३।।

जय हो जैनी वाणी जग में, सप्तभंगमय गंगा है।
व्यय उत्पाद ध्रौव्ययुत द्रव्यों, के स्वभाव को प्रगट करे।।
अनुपम शिवसुख द्वार खोलती, अव्यय सुख को देती है।
विघ्न रहित अरु कर्म धूलि से, रहित मोक्ष को देती है।।३।।

अर्थ—अनन्तर जिनेन्द्र का केवलज्ञान जयवंत हो, जिसमें स्यादस्ति, स्यान्नास्ति आदि सात भंगरूप कल्लोलें हैं जो द्रव्यों के उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यरूप स्वभावों को प्रकाशित करता है। ऐसा यह केवलज्ञान अनन्तसुख के मोहनीयरूप द्वार को अंतराय- रूप आगल से रहित उद्घाटन कर ज्ञानदर्शनावरणरूप रज से रहित व्याधि अथवा जरा- मरण से रहित अविनश्वर मोक्ष को देवे।।३।।

श्री गौतमस्वामी नवदेवों की स्तुति कर रहे हैं–

अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायेभ्यस्तथा च साधुभ्यः।
सर्वजगद्वन्द्येभ्यो नमोऽस्तु सर्वत्र सर्वेभ्यः।।४।।

अर्हत् सिद्धाचार्य उपाध्याय, सर्व साधुगण सुरवंदित।
त्रिभुवन वंदित पंच परमगुरु, नमोऽस्तु तुमको मम संतत।।४।।

अर्थ—सम्पूर्ण जगत् द्वारा वन्दनीय सब अर्हंतों को , सब आचार्यों को, सब उपाध्यायों को और सब साधुओं को नमस्कार हो ।।४।।

मोहादिसर्वदोषारिघातकेभ्यः सदाहतरजोभ्यः।
विरहितरहस्कृतेभ्यः पूजार्हेभ्यो नमोऽर्हद्भ्यः ।।५।।

मोहारि के घातक द्वयरज, आवरणों से रहित जिनेश।
विघ्न-रहस विरहित पूजा के, योग्य अर्हत को नमूँ हमेश।।५।।

अर्थ—जो मोह, राग, द्वेष आदि सम्पूर्ण दोषरूप शत्रुओं के घातक हैं जिनने हमेशा के लिये ज्ञानावरणरूप रज को नष्ट कर दिया है, तथा अन्तराय कर्म का भी जिनने विनाश कर दिया है ऐसे पूजा योग्य अर्हंतों को नमस्कार हो ।।५।।

क्षान्त्यार्जवादिगुणगणसुसाधनं सकललोकहितहेतुं।
शुभधामनि धातारं वन्दे धर्मं जिनेन्द्रोक्तम्।।६।।

क्षमादि उत्तम गुणगण साधक, सकल लोक हित हेतु महान्।
शुभ शिवधाम धरे ले जाकर, जिनवर धर्म नमूँ सुख खान।।६।।

अर्थ—क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, आदि गुणों का समुदाय जिसकी उत्पत्ति में साधन है। जो सम्पूर्ण लोक के हित का कारण है और शुभ धाम–जो निर्वाण उसमें स्थापन करने वाला है ऐसे जिनेन्द्रोक्त धर्म की वन्दना करता हूँ ।।६।।

मिथ्याज्ञानतमोवृतलोकैकज्योतिरमितगमयोगि।
सांगोपांगमजेयं जैनं वचनं सदा वन्दे।।७।।

मिथ्याज्ञान तमोवृत जग में, ज्योतिर्मय अनुपम भास्कर।
अंगपूर्वमय विजयशील, जिनवचन नमूँ मैं शिर नत कर।।७।।

अर्थ—जो मिथ्याज्ञानरूप अन्धकार से आच्छादित लोक का प्रकाशक होने से अद्वितीय ज्योति है। अपरिमित श्रुतज्ञान का जनक होने से संबंधी है। आचारादि अङ्गों और पूर्व वस्तु आदि उपांगों से युक्त है। तथा एकान्तवादियों कर अजेय है ऐसे जैनवचन को सदा वन्दना करता हूँ ।।७।।

भवनविमानज्योतिर्व्यंतरनरलोकविश्वचैत्यानि।
त्रिजगदभिवन्दितानां वन्दे त्रेधा जिनेन्द्राणां।।८।।

भवनवासि व्यन्तर ज्योतिष, वैमानिक में नरलोक में ये।
जिनभवनों की त्रिभुवन वंदित, जिनप्रतिमा को वंदूँ मैं।।८।।

अर्थ— भवनवासी देवों, कल्पवासी देवों,ज्योतिष्क देवों और व्यन्तर देवों के विमानों में तथा मनुष्य लोक में तीन जगत् कर वन्दनीय जिनेन्द्रदेव की जितनी भर प्रतिमा हैं उन सबको मन, वचन और काय से वन्दना करता हूँ ।।८।।

भुवनत्रयेऽपि भुवनत्रयाधिपाभ्यर्च्यतीर्थकर्तृणाम्।
वन्दे भवाग्निशान्त्यै विभवानामालयालीस्ताः।।९।।

भुवनत्रय में जितने जिनगृह, भवविरहित तीर्थंकर के।
भवाग्नि शांति हेतु नमूँ मैं, त्रिभुवनपति से अर्चित ये।।९।।

अर्थ—जिनका संसारपरिभ्रमण विनष्ट हो चुका है, तीन भुवन के स्वामी देवेन्द्र, नरेन्द्र और धरणेन्द्र द्वारा पूज्य ऐसे तीर्थंकरों के आलय—मन्दिर की पंक्तियों को भी संसाररूप अग्नि की शांति के लिये वन्दना करता हूं ।।९।।

इति पंच महापुरुषाः प्रणुता जिनधर्म-वचन-चैत्यानि।
चैत्यालयाश्च विमलां दिशन्तु बोधिं बुधजनेष्टां।।१०।।

इस विध प्रणुत पंचपरमेष्ठी, श्री जिनधर्म जिनागम को।
विमल चैत्य चैत्यालय वंदूँ, बुधजन इष्ट बोधि मम दो।।१०।।

अर्थ—इस तरह वंदना किये गये अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, जिनधर्म, जिनवचन, जिनचैत्य और जिनचैत्यालय ये नवदेवता बुधजन जो गणधर देवादि उनको इष्ट ऐसी मुझे निर्मल बोधि देवें ।।१०।।

श्रीगौतमस्वामी कृत्रिम–अकृत्रिम जिनप्रतिमाओं की वंदना करते हैं–

अकृतानि कृतानि चाप्रमेयद्युतिमन्ति द्युतिमत्सु मन्दिरेषु।
मनुजामरपूजितानि वंदे प्रतिबिम्बानि जगत्त्रये जिनानाम्।।११।।

द्युतिकर जिनगृह में अकृत्रिम, कृत्रिम अप्रमेय द्युतिमान।
नर सुर पूजित भुवनत्रय के, सब जिन बिंब नमूँ गुणखान।।११।।

अर्थ—तीन जगत में विद्यमान प्रचुरप्रभा से समन्वित मन्दिरों में स्थित मनुष्यों और देवों द्वारा पूज्य, प्रचुरतर प्रभायुक्त कृत्रिम और अकृत्रिम जिनेन्द्र के प्रतिबिंबों को प्रणमन करता हूँ ।।११।।

द्युतिमंडलभासुराङ्गयष्टीः प्रतिमा अप्रतिमा जिनोत्तमानाम्।
भुवनेषु विभूतये प्रवृत्ता वपुषा प्राञ्जलिरस्मि वन्दमानः।।१२।।

द्युतिमंडल भासुर तनु शोभित, जिनवर प्रतिमा अप्रतिम हैं।
जग में वैभव हेतु उन्हें, वंदूँ अंजलिकर शिर नत मैं।।१२।।

अर्थ—जो तीन भुवन में विद्यमान हैं जिनका शरीर—यष्टि प्रभामंडल से दैदीप्यमान है, ऐसी अर्हंतों की अनुपम प्रतिमाओं को वन्दना करने वाला मैं पुण्य की प्राप्ति के निमित्त शरीर से अंजलि बांधता हूँ अर्थात् ऐसी प्रतिमाओं को हाथ जोड़कर नमस्कार करता हूँ।।१२।।

विगतायुधविक्रियाविभूषाः प्रकृतिस्थाः कृतिनां जिनेश्वराणाम्।
प्रतिमाः प्रतिमागृहेषु कांत्याप्रतिमाः कल्मषशान्तयेऽभिवन्दे।।१३।।

आयुध विक्रिय भूषा विरहित, जिनगृह में प्रतिमा प्राकृत।
कांती से अनुपम हैं कल्मष, शांति हेतु मैं नमूँ सतत।।१३।।

अर्थ—जो आयुध, विकार, आभूषणों से रहित हैं। अपने ही स्वभाव में स्थित हैं तथा कान्ति कर अतुल्य हैं ऐसी कृती अर्थात् कृतकृत्य जिनेश्वरों की प्रतिमागृहों में विराजमान प्रतिमाओं को पाप की शान्ति के लिये वन्दन करता हूँ।।१३।।

कथयंति कषायमुक्तिलक्ष्मीं परया शान्ततया भवान्तकानाम्।
प्रणमाम्यभिरूपमूर्तिमंति प्रतिरूपाणि विशुद्धये जिनानाम्।।१४।।

परम शांति से कषायमुक्ती, को कहती मनहर अभिरूप।
भव के अंतक जिन की प्रतिमा, प्रणमूँ मन विशुद्धि के हेतु।।१४।।

अर्थ—उत्कृष्ट शान्तता युक्त होने से कषाय का अभावरूप लक्ष्मी को कहने वाली, जिनेश्वर का जैसा रूप है वैसी मूर्तिमती, ऐसी संसार का नाश कर देने वाले जिनेश्वरों की मूर्तियों को आत्मपरिणामों की निर्मलता होने के लिये नमस्कार करता हूँ।।१४।।

यदिदं मम सिद्धभक्तिनीतं सुकृतं दुष्कृतवर्त्मरोधि तेन।
पटुना जिनधर्म एव भक्तिर्भवताज्जन्मनि जन्मनि स्थिरा मे।।१५।।

दुष्कृतपथ रोधक मम सिद्ध-भक्ति से हुआ पुण्य जो भी।
भव-भव में जिनधर्म हि में, दृढ़ भक्ति रहे फल मिले यही।।१५।।

अर्थ—तीन जगत में प्रसिद्ध अर्हंतों के प्रतिबिंबों की भक्ति करने से जो यह पुण्य मुझे प्राप्त हुआ है जो कि पाप के मार्ग को रोकने वाला है उस समर्थ पुण्य से मेरी भक्ति जन्म-जन्म में जिनधर्म में ही स्थिर होवे ।।१५।।

चतुर्णिकाय देवों के गृहों में व मध्यलोक के कृत्रिम–अकृत्रिम जिनप्रतिमाओं की वंदना करते हैं–

अर्हतां सर्वभावानां दर्शनज्ञानसम्पदाम् ।
कीर्तयिष्यामि चैत्यानि यथाबुद्धि विशुद्धये।।१६।।

सब पदार्थवित् दर्श ज्ञान-सम्पत् युत अर्हत् की प्रतिमा।
यथा बुद्धि मनशुद्धि हेतु, गुण कीर्तन करूँ अतुल महिमा।।१६।।

अर्थ—सम्पूर्ण पदार्थ जिनके विषयभूत हैं अथवा परिपूर्ण यथाख्यातचारित्र जिनके विद्यमान है, क्षायिकदर्शन और क्षायिकज्ञानरूप संपदा जिनके मौजूद है ऐसे अर्हंतों के चैत्यों का अपनी बुद्धि के अनुसार परिणामों की निर्मलता के लिए अथवा कर्ममल के प्रक्षालन के लिये कीर्तन करूँगा ।।१६।।

श्रीमद्भावनवासस्थाः स्वयंभासुरमूर्तयः।
वंदिता नो विधेयासुः प्रतिमाः परमां गतिम् ।।१७।।

श्रीमद् भवनवासि के गृह में, भासुर जिनमूर्ति स्वयमेव।
परम सिद्धगति करें हमारी, वंदूँ उन्हें करूँ नित सेव।।१७।।

अर्थ—मेरे द्वारा जिनकी वन्दना की गई है जो भवनवासी देवों के दैदीप्यमान भवनों में स्थित हैं जिनका स्वरूप स्वयं भासुररूप है ऐसी प्रतिमाएँ मुझ वंदक को परमगति अर्थात् मुक्ति प्रदान करें।।१७।।

श्री गौतमस्वामी मध्यलोक के कृत्रिम–अकृत्रिम जिनबिंबों की वन्दना करते हैं–

यावन्ति सन्ति लोकेऽस्मिन्नकृतानि कृतानि च।
तानि सर्वाणि चैत्यानि वन्दे भूयांसि भूतये।।१८।।

इस जग में जितनी प्रतिमा हैं, कृत्रिम अकृत्रिम सबको।
मैं वंदूँ शिव वैभव हेतु, सब जिनचैत्य जिनालय को।।१८।।

अर्थ—इस तिर्यग्लोक में कृत्रिम और अकृत्रिम जितने प्रचुरतर प्रतिबिंब हैं उन सबको विभूति के लिए वंदन करता हूँ ।।१८।।

ये व्यन्तरविमानेषु स्थेयांसः प्रतिमागृहाः।
ते च संख्यामतिक्रान्ताः सन्तु नो दोषविच्छिदे।।१९।।

व्यंतर के विमान में जिनगृह, उनमें अकृत्रिम प्रतिमा।
संख्यातीत कही हैं वंदूँ, दोष नाश के हेतु सदा।।१९।।

अर्थ— व्यंतरों के आवासों में सर्वदा अवस्थित जो असंख्यात प्रतिमागृह हैं वे मेरे दोषों की शान्ति के लिये होवें ।।१९।।

ज्योतिषामथ लोकस्य भूतयेऽद्भुतसम्पदः।
गृहाः स्वयंभुवः सन्ति विमानेषु नमामि तान्।।२०।।

ज्योतिष देवों के विमान में, अद्भुत संपत्युत जिनगेह।
स्वयंभुवा प्रतिमा भी अगणित, उन्हें नमूँ निज वैभव हेतु।।२०।।

अर्थ— अनन्तर ज्योतिषी देवों के विमानों में अद्भुत सम्पत्तिधारी अर्हंतों के जो शाश्वत गृह हैं उनको मैं विभूति के निमित्त नमस्कार करता हूँ ।।२०।।

वन्दे सुरतिरीटाग्रमणिच्छायाभिषेचनम्।
याः क्रमेणैव सेवन्ते तदर्चाः सिद्धिलब्धये।।२१।।

सुरपति के नत मुकुटमणि–प्रभ से अभिषेक हुआ जिनका।
वैमानिक सुर सेवित प्रतिमा, सिद्धि हेतु मैं नमूँ सदा।।२१।।

अर्थ— जो देवों के मुकुट के अग्र भाग में लगी हुई मणियों की कान्ति से अभिषेक को चरणों द्वारा सेवन करती हैं अर्थात् जिनके चरणों में वैमानिक देव सिर झुकाते हैं उन वैमानिक देवों के विमान संबंधी प्रतिमाओं को मुक्ति की प्राप्ति के लिये नमस्कार करता हूँ ।।२१।।

इति स्तुतिपथातीतश्रीभृतामर्हतां मम।
चैत्यानामस्तु संकीर्तिः सर्वास्रवनिरोधिनी।।२२।।

इस विध स्तुति पथातीत, अन्तर बाहिर श्रीयुत अर्हन्।
चैत्यों के संकीर्तन से मम, सर्वास्रव का हो रोधन।।२२।।

अर्थ— इस प्रकार स्तुति के मार्ग को अतिक्रमण करने वाली अर्थात् जिसकी स्तुति इन्द्रादिक देव भी नहीं कर सकते ऐसी अंतरंग और बहिरंग लक्ष्मी को धारण करने वाले अर्हंतों के चैत्यों की स्तुति मेरे सम्पूर्ण आस्रवों को रोकने वाली होवे ।।२२।।

श्री गौतमस्वामी अर्हंत भगवान को महानदीरूपी तीर्थ बना रहे हैं–

अर्हन्महानदस्य त्रिभुवनभव्यजनतीर्थयात्रिकदुरित-
प्रक्षालनैककारणमतिलौकिककुहकतीर्थमुत्तमतीर्थम्।।२३।।
लोकालोकसुतत्त्वप्रत्यवबोधनसमर्थदिव्यज्ञान-
प्रत्यहवहत्प्रवाहं व्रतशीलामलविशालकूलद्वितयम्।।२४।।

शुक्लध्यानस्तिमितस्थितराजद्राजहंसराजितमसकृत्।
स्वाध्यायमंद्रघोषं नानागुणसमितिगुप्ति-सिकतासुभगम्।।२५।।

क्षान्त्यावर्तसहस्रं सर्वदया -विकचकुसुमविलसल्लतिकम्
दुःसहषरीषहाख्यद्रुततररंगत्तरंगभंगुरनिकरम् ।।२६।।

व्यपगतकषायफेनं रागद्वेषादिदोष-शैवलरहितम्।
अत्यस्तमोह-कर्दममतिदूरनिरस्तमरण-मकरप्रकरम्।।२७।।

ऋषिवृषभस्तुतिमंद्रोद्रेकितनिर्घोष-विविधविहगध्वानम्।
विविधतपोनिधि-पुलिनं सास्रवसंवरणनिर्जरानिस्रवणम्।।२८।।

गणधरचक्रधरेन्द्रप्रभृतिमहाभव्यपुंडरीकैः पुरुषैः।
बहुभिः स्नातं भक्त्या कलिकलुषमलापकर्षणार्थममेयम्।।२९।।

अवतीर्णवतः स्नातुं ममापि दुस्तरसमस्तदुरितं दूरं।
व्यवहरतु परमपावनमनन्यजय्यस्वभावभावगभीरम्।।३०।।

अर्हद्देव महानद उत्तम-तीर्थ अलौकिक हैं जग में।
त्रिभुवन भविजन तीर्थस्नान से, पापों का क्षालन करते।।२३।।

लोकालोक सुतत्त्व प्रकाशक, दिव्यज्ञान जल नित बहता।
शील रु सद्व्रत विशाल निर्मल, दो तट से शोभित दिखता।।२४।।

शुक्लध्यानमय राजहंस, स्थिर राजत है इस नद में।
मंद्रघोष स्वाध्याय विविधगुण, समिति गुप्ति बालू चमके।।२५।।

क्षमादि हैं आवर्त सहस्त्रों, सर्वदयामय कुसुम खिले।
लता शोभती दुःसह परीषह, भंग तरंगित हैं लहरें।।२६।।

रहित कषाय फेन से राग-द्वेष आदि शैवाल रहित।
रहित मोह कीचड़ से मरणादिक जलचर मकरादि रहित।।२७।।

ऋषि प्रधान के मधुर स्तव हों, विविध पक्षि के शब्द सदृश।
विविध साधुगण तट हैं आस्रव, रोध निर्जरा जल निःसृत।।२८।।

गणधर चक्री इन्द्र आदि जो, भव्य प्रवर बहु पुरुष प्रधान।
कलिमल कलुष दूर करने हित, भक्ति से यहाँ किया स्नान।।२९।।

इस विध श्री अर्हंत महाप्रभु, महातीर्थ गणधर कहते।
भविजन पाप मैल क्षालन हित, इसमें अवगाहन करते।।
अति पावन यह तीर्थ अन्य से, अजेय अनुपम है गंभीर।
मैं स्नान हेतु उतरा हूँ, मम दुष्कृत मल करिये दूर।।३०।।

अर्थ—जो तीन भुवन में निवास करने वाले भव्यजनरूप तीर्थ यात्रियों के पाप कर्म के प्रक्षालन करने में अद्वितीय कारण है, जिसने लौकिक मिथ्या तीर्थों का अतिक्रमण—उल्लंघन कर दिया है, जिसमें लोक और अलोक का सच्चा स्वरूप समझाने में समर्थ ऐसे दिव्य केवलज्ञान या मतिश्रुतादि ज्ञान ही प्रतिदिन बहते हुये प्रवाह हैं, व्रत और शील ही जिसके स्वच्छ और विशाल दो तट हैं, जो शुक्ल ध्यानरूप स्थित ऐसे दीप्त राजहंसों कर शोभित है, जिसमें निरंतर स्वाध्याय पाठ ही मनोज्ञ नाद (शब्द) हैं, जो चौरासी लाख गुण, पंच समिति और तीन गुप्तिरूप सिकता (बालू) से सुशोभित है, जिसमें क्षमागुण ही हजारों आवर्त—लहरें हैं, सम्पूर्ण प्राणियों पर दयाभाव ही खिले हुए पुष्पों से शोभायमान बेल है, दुःसह क्षुधादि परीषह ही शीघ्र इधर—उधर फैलती हुई चंचल तरंगों का समुदाय है, कषायरूप फेन जिसमें नष्ट हो गया है, जो राग-द्वेषादि दोषरूप शैवाल (कांजी) से रहित है, जिसमें मोहरूप कीचड़ का अभाव है, मरणरूप मकरों का समूह नष्ट हो चुका है, ऋषिश्रेष्ठ गणधरदेवादिकों कर बोली गई स्तुतियों के मनमोहक उत्कट शब्द ही नाना प्रकार के पक्षियों के कलरव हैं, नाना भांति के तपोनिधि—मुनि ही किनारा है, जो आते हुए कर्मरूप जल के संवरण और आए हुए कर्मरूप जल के निःस्रवण से मुक्त है, जिसमें गणधर, चक्रधर, इन्द्र आदि भव्य-पुंडरीक पुरुषों ने पापरूप कलुष मल को दूर करने के लिये भक्तिपूर्वक स्नान किया है, जो बड़ा भारी है, परम पवित्र है, जिनके स्वरूप प्रतिवादियों करके न जीते जा सकें ऐसे जीवादि पदार्थों से जो अगाध है ऐसा अर्हंतरूप महानद का उत्तम तीर्थ पापमल का प्रक्षालनरूप स्नान करने के लिये प्रविष्ट हुए मेरे भी दुस्तर समस्त पापों का व्यवहरण—नाश करे ।।२३-३०।।

श्री गौतमस्वामी भगवान की वीतरागता का बहुत ही सुंदर वर्णन करते हुये वर्धमान स्वामी की वंदना कर रहे हैं–

अताम्रनयनोत्पलं सकलकोपवह्नेर्जयात्
कटाक्षशरमोक्षहीनमविकारतोद्रेकतः ।
विषादमदहानितः प्रहसितायमानं सदा
मुखं कथयतीव ते हृदयशुद्धिमात्यन्तिकीम्।।३१।।

निराभरणभासुरं विगतरागवेगोदया-
न्निरंबरमनोहरं प्रकृतिरूपनिर्दोषतः।
निरायुधसुनिर्भयं विगतहिंस्यहिंसाक्रमात्,
निरामिषसुतृप्तिमद्विविधवेदनानां क्षयात्।।३२।।

मितस्थितनखांगजं गतरजोमलस्पर्शनं
नवांबुरुहचंदनप्रतिमदिव्यगन्धोदयम् ।
रवीन्दुवुकुलिशादिदिव्यबहुलक्षणालंकृतं
दिवाकरसहस्त्रभासुरमपीक्षणानां प्रियम्।।३३।।

हितार्थपरिपंथिभिः प्रबलरागमोहादिभिः
कलंकितमना जनो यदभिवीक्ष्य शोशुध्यते।
सदाभिमुखमेव यज्जगति पश्यतां सर्वतः
शरद्विमलचन्द्रमंडलमिवोत्थितं दृश्यते।।३४।।

तदेतदमरेश्वरप्रचलमौलिमालामणि–
स्फुरत्किरणचुंबनीयचरणारविन्दद्वयम्।
पुनातु भगवज्जिनेन्द्र ! तव रूपमन्धीकृतं
जगत् सकलमन्यतीर्थगुरुरूपदोषोदयैः।।३५।।

क्रोधाग्नि को जीत लिया नहिं, नेत्र कमल लालिमा प्रभो!
नहिं विकार उद्रेक अतः प्रभु, दृष्टि कटाक्ष रहित तुम हो।।
मद विषाद से रहित अतः, स्मित मुख सदा रहे भगवन् ।
कहता है यह मंदहास्य तव, अंतःकरण शुद्धि पूरण।।३१।।

रागोद्रेक रहित होने से, बिन आभूषण शोभित हो।
प्रकृति रूप निर्दोष तुम्हारा, प्रभु निर्वस्त्र मनोहर हो।।

हिंसा हिंस्य भावविरहित से, आयुध रहित सुनिर्भय हो।
विविध वेदना के क्षय से बिन-भोजन तृप्त सदा प्रभु हो।।३२।।

वृद्धि रहित नख केश प्रभो! रजमल स्पर्श न हो तन को।
विकसित कमल सुचंदन सम है, दिव्य सुगंधित देह विभो!
रवि शशि वज्र दिव्य लक्षण से, शोभित तव शुभरूप महान।
कोटि सूर्य से अधिक चमक, फिर भी दर्शक को प्रिय सुखदान।।३३।।

मोहराग से दूषित हितपथ-द्वेषीजन के सुन उपदेश।
कलुषमना जन हुए जगत में, शुचि होते वे तुमको देख।।
अतिशय युत तव मुख दर्शक, जन को अपने सन्मुख दिखता।
शरद् विमल शशि मंडल सम, तव आस्य चन्द्र है उदित हुआ।।३४।।

अमरेश्वर के नमस्कार से, मुकुट मणिप्रभ किरणों से।
चुम्बित चरण सरोरुह भगवन् ! तव शुभरूप मनोहर है।।
अन्य देव गुरु तीर्थ उपासक, सकल भुवन यह अन्ध समान।
उन सबको तव रूप पवित्र, करे अरु नेत्र करे अमलान।।३५।।

अर्थ—हे भगवन् जिनेन्द्र ! सम्पूर्ण कोपरूप अग्नियों के क्षय हो जाने से जिसमें नयनरूप उत्पलपत्र कुछ-कुछ लाल हैं या लालिमा रहित हैं, वीतरागता की परम प्रकर्षता के होने से जो कटाक्षरूप वाणों के छोड़ने से रहित है, विषाद और मद की हानि होने से सदा प्रफुल्लित है ऐसा आपके यथाजातरूप में आपका मुख आपके हृदय की आत्यंतिक शुद्धि को कह रहा है। हे भगवन्! आपका रूप राग के आवेग के उदय के नष्ट हो जाने से आभरण रहित होने पर भी भासुररूप है, आपका स्वाभाविक रूप निर्दोष है इसलिये वस्त्र रहित नग्न होने पर भी मनोहर है, आपका यह रूप न औरों के द्वारा हिंस्य है और न औरों का हिंसक है इसलिये आयुध रहित होने पर भी अत्यन्त निर्भय स्वरूप है, तथा नाना प्रकार की क्षुत्पिपासादि वेदनाओं के विनाश हो जाने से आहार न करते हुए भी तृप्तिमान् है। आपके नख और केश नहीं बढ़ते हैं वे उतने ही हर समय रहते हैं। जितने केवलज्ञान की उत्पत्ति के समय होते हैं। रजोमल का स्पर्श भी आपके नहीं हैं, आपके रूप में विकसित कमल और चन्दन के सदृश दिव्यगंध

का उदय है। आपका यह रूप सूर्य, चन्द्रमा, वज्र आदि एक सौ आठ प्रशस्त-चिन्हों से अलंकृत है तथा हजारों सूर्यों के समान भासुर होकर भी नेत्रों को अत्यन्त प्रिय है। आपके रूप को देखकर मोक्ष के परिपंथी शत्रु ऐसे प्रबल राग, मोह आदि दोषों से कलंकित मनवाला जन-समुदाय अतिशय शुद्ध हो जाता है, जो जगत् में देखने वालों को चारों दिशाओं में सदा सन्मुख ही शरत्कालीन उदयापन्न निर्मल चन्द्रमा के समान दीखता है, देवेन्द्रों के नमस्कार प्रवण मुकुटों की पंक्तियों में जटित मणियों की स्फुरायमान किरणों से आपके दोनों चरण-कमल आलिंगित हैं ऐसा वह यह आपका रूप, जैनमत से भिन्न अन्य मिथ्या तीर्थों से भी गुरु रूप राग-द्वेष, मोहादि दोषों के प्रादुर्भाव से अन्धे हुए सारे जगत को पवित्र करे ।।३१-३५।।

श्री गौतमस्वामी तीनों लोकों के समस्त कृत्रिम-अकृत्रिम जिनप्रतिमाओं की वंदना करते हुये कहते हैं-

आलोचना या अंचलिका

इच्छामि भंते ! चेइयभक्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं । अहलोय-तिरियलोय-उड्ढलोयम्मि किट्टिमाकिट्टिमाणि जाणि जिणचेयाणि ताणि सव्वाणि तीसुवि लोएसु भवणवासिय-वाण-विंतर-जोइसिय-कप्पवासियत्ति चउविहा देवा सपरिवारा दिव्वेण गंधेण, दिव्वेण पुप्फेण, दिव्वेण धूवेण, दिव्वेण चुण्णेण, दिव्वेण वासेण, दिव्वेण ण्हाणेण, णिच्चकालं अंचंति पुज्जंति वंदंति णमंसंति अहमवि इह संतो तत्थ संताइं णिच्चकालं अंचेमि पुज्जेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ।

भगवन् ! चैत्यभक्ति अरु कायोत्सर्ग किया उसमें जो दोष।
उनकी आलोचन करने को, इच्छुक हूँ धर मन सन्तोष।।
अधो मध्य अरु ऊर्ध्वलोक में, अकृत्रिम कृत्रिम जिनचैत्य।
जितने भी हैं त्रिभुवन के, चउविध सुर करें भक्ति से सेव।।१।।

भवनवासि व्यंतर ज्योतिष, वैमानिक सुर परिवार सहित।
दिव्य गंध सुम धूप चूर्ण से, दिव्य न्हवन करते नितप्रति।।
अर्चें पूजें वंदन करते, नमस्कार वे करें सतत।
मैं भी उन्हें यहीं पर अर्चूं, पूजूँ वंदूँ नमूँ सतत।।२।।

दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, होवे बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।३।।

अर्थ—हे भगवन्! चैत्यभक्ति और तत् संबंधी कायोत्सर्ग किया उसकी आलोचना करने की इच्छा करता हूँ। अधोलोक, तिर्यग्लोक और ऊर्ध्वलोक में जो कृत्रिम और अकृत्रिम जितनी प्रतिमाएँ हैं उन सबको तीन लोक में भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और कल्पवासी ये चार प्रकार के देव अपने-अपने परिवार सहित दिव्य गंध से, दिव्य पुष्पों से, दिव्य धूप से, दिव्य चूर्ण से, दिव्य सुगंधि से और दिव्य अभिषेक से सदा अर्चते हैं पूजते हैं वन्दते हैं नमस्कार करते हैं, मैं भी यहीं पर बैठा हुआ वहाँ स्थित प्रतिमाओं को सदा अर्चता हूँ पूजता हूँ वन्दता हूँ नमस्कार करता हूँ, मेरे दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, बोधि-रत्नत्रय का लाभ हो, सुगति में गमन हो, समाधिमरण हो, जिनगुणसंपत्ति प्राप्त हो।

जाप्य मंत्र

1. ॐ ह्रीं अर्हं दिव्यध्वनिस्वामिने श्रीमहावीरतीर्थंकराय नमः।
2. ॐ ह्रीं अर्हं श्रीगौतमगणधरस्वामिने नमः।
3. ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भूत-स्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानेभ्यो नमः।

चैत्यभक्ति

अपरनाम

जयति भगवान् स्तोत्रम्

(श्री प्रभाचन्द्राचार्य विरचित संस्कृत टीका एवं हिन्दी–टीका सहित)

श्रीगौतमादिपदमद्भुतपुण्यबन्ध-मुद्द्योतिताखिलममोहमघप्रणाशम्।
वक्ष्ये जिनेश्वरमहं प्रणिपत्य तथ्यम् निर्वाणकारणमशेषजगद्धितार्थम्[१]।।

सत्य और मुक्तिप्राप्ति के लिए हेतु तथा त्रैलोक्य का हित करने के लिए प्रयोजनभूत जिनेश्वर को मैं नमस्कार करके अद्भुत पुण्यबन्धकारक संपूर्ण विषयों को बतलाने वाला पापनाशक श्री गौतमादि ऋषियों के सफल वचनों को मैं कहता हूँ।

श्री वर्धमानस्वामिनं प्रत्यक्षीकृत्य गौतमस्वामी स्तुतिमाह—

–हरिणीछन्दः–

जयति भगवान् हेमाम्भोजप्रचारविजृंभिता-
वमरमुकुटच्छायोद्गीर्णप्रभापरिचुम्बितौ।
कलुषहृदया मानोद्भ्रान्ताः परस्परवैरिणो।
विगतकलुषाः पादौ यस्य प्रपद्य विशश्वसुः।।१।।

जयति सर्वोत्कर्षेण वर्तते। **कोऽसौ ?** भगवान् इन्द्रादीनां पूज्यः, केवलज्ञानसम्पन्नो वा। कथम्भूतोऽसौ? यस्य **पादौ प्रपद्य** प्राप्य। विशश्वसुः विश्वासं गताः ? के ते ? **परस्परवैरिणः** अहिनकुलादयः। कथम्भूताः? **कलुषहृदयाः** क्रूरमनसः। **मानोद्भ्रान्ताः** मानेनाहङ्कारेण स्तब्धत्वेन उद्भ्रान्ताः यथावदात्मस्वरूपात्प्रच्याविताः। ते कथम्भूताः सन्तो **विशश्वसुः? विगतकलुषाः** विनष्टक्रूरभावाः। किं विशिष्टौ पादौ? **हेमाम्भोजप्रचारविजृम्भितौ** हेमाम्भोजेषु सुवर्णमयपद्मेषु प्रचारः प्रकृष्टोऽन्यजनासम्भवी चरणक्रमसंचाररहितश्चारः गमनं तेन विजृम्भितौ विलसितौ शोभितौ तेषां वा प्रचारो रचना–पादन्यासे पद्मं सप्त पुरः पृष्टतश्च सप्त इत्येवंरूपः तत्र विजृम्भितौ प्रवृत्तौ विलसितौ वा। पुनरपि

१. सामायिक भाष्य पृ. १०४ से १४१ तक।

किंविशिष्टौ तौ इत्याह–**अमेरत्यादि** अमरा देवास्तेषां मुकुटानि तेषु छाया छायामणयः तत उद्गीर्णा निःसृता सा चासौ प्रभा च तया **परिचुम्बितौ** संश्लिष्टौ आलिङ्गितौ।।१।।

श्री गौतमस्वामी श्रीवर्धमान प्रभु को प्रत्यक्ष देखकर उनकी स्तुति करते हैं–

अर्थ — सामान्य लोग क्रम से एक–एक चरण जमीन पर रखकर चलते हैं। परन्तु भगवान् जब उपदेश देने के लिए विहार करते हैं, तब वे अधर गमन करते हैं तथा उनके दो चरण आगे–पीछे न होकर सम गमन करते हैं। वे देव विरचित सुवर्णकमलों पर से विचरते हैं, तब प्रभु के चरण अतिशय सुन्दर दिखते हैं। जब प्रभु का विहार होता है, तब उनके चरणों के आगे सात कमल और पीछे सात कमल तथा पदतल में एक कमल ऐसे पन्द्रह कमलों की निर्मिति देव करते हैं। देव जब उनके चरणों में नमस्कार करते हैं, तब उनके मुकुट स्थित छायारत्नों की कान्ति जिनेन्द्र के चरणों पर पड़ने से चरण अपूर्व सुन्दर दिखते हैं। क्रूर तथा अहंकार से आत्मस्वरूप से च्युत हुए तथा परस्पर के वैरी जीव जिनेन्द्र के चरणों का आश्रय पाकर अपना क्रूर स्वभाव छोड़ देते हैं तथा तत्काल शान्त बनते हैं। देखिए, केवलज्ञान संपन्न तथा देववन्द्य महावीर प्रभु का यह सामर्थ्य कितना अवर्णनीय है। भगवन्त का सारे विश्व में विजय हो, उन्हें मेरा नमस्कार हो।।१।।

तदनु जयति श्रेयान् धर्मः प्रवृद्धमहोदयः।
कुगति-विपथ-क्लेशाद्योऽसौ विपाशयति प्रजाः।।
परिणतनयस्याङ्गी-भावाद्विवित्तविकल्पितं।
भवतु भवतस्त्रातृ त्रेधा जिनेन्द्रवचोऽमृतम्।।२।।

तदन्वित्यादि–तस्माद्भगवन्नमस्कारदनु पश्चात्। जयति। कोऽसौ ? धर्मो नरकादिषु गतिषु पततः प्राणिनः धरतीति धर्मः उत्तमक्षमादि-लक्षणश्चारित्रस्वरूपो वा। कथम्भूतः श्रेयान् अतिशयेन प्रशस्यः। पुनरपि कथम्भूतः ? प्रवृद्धमहोदयः प्रकर्षेण वृद्धो वृद्धिं गतो महान् उदयः स्वर्गादिपदप्राप्तिर्यस्मात्प्राणिनाम्। पुनरपि कथम्भूतः ? योऽसौ धर्मः। प्रजाःलोकान्। विपाशयति पाशाद्विमोचयति। कथम्भूतात्पाशादित्याह–कुगतीत्यादि–कुत्सिता गतिः कुगतिः, विरूपकः पन्था। विपथः

मिथ्यादर्शनादिः, क्लेशो दुःखं कुगतिश्च, विपथश्च क्लेशश्च तत्तस्मात्तद्रूपादित्यर्थः। पूर्वार्द्धेन धर्मं नमस्कृत्योत्तरार्धेन जैनेन्द्रं वचो नमस्कुर्वन्नाह–परिणतेस्यादि विविधपर्यायरूपतया परिणमते यत्तत्परिणतं द्रव्यमुच्यते, तत्र नयः परिणतनयः द्रव्यार्थिकनय–स्तस्य अङ्गीभावात् अप्रधानभावात् पर्यायार्थिकनयप्राधान्यात् इत्यर्थः। अथवा परिणतं परिणामस्तत्र नयः पर्यायार्थिकनयः तस्य अङ्गीभावात्स्वीकारात्। विविक्तैर्गणधरदेवादिभिः विविक्तं वा विभिन्नं विकल्पितं अङ्गपूर्वादिभेदेन रचितम्। यदि वा विवित्तं विशुद्धं पूर्वापरविरोधदोषविवर्जितं यथाभवत्येवं विकल्पितं रचितम्। कथम्भूतं तदस्त्वित्याह–भवत इत्यादि भवतः संसारात्। त्रातृ रक्षकम्। भवतु सम्पद्यताम्। कथं तद्व्यवस्थितमित्याह त्रेधेत्यादि। त्रेधा उत्पादव्ययध्रौव्यरूपैः अङ्गपूर्वगतबाह्यरूपैः वा त्रिभिः प्रकारैर्व्यवस्थितम्। यत् जिनेन्द्रवचोऽमृतम् जिनेन्द्रवच एव अमृतम्। अमृतमिवामृतमाप्यायकत्वात्। यथैव हि प्राणिनो देहदुःखापनेतृत्वेनामृतं आप्यायकंतथा नारकादिमहादुःखपीडितानां तेषां तदपनेतृत्वेनाप्यायकत्वात्तद्वचोऽमृतमुच्यते।।२।।

श्री गौतमस्वामी धर्म तथा जिनेश्वर को नमस्कार करते हुए कहते हैं–

अर्थ–नरकादि दुर्गतियों में गिरते हुए प्राणियों को जो ऊपर उठाता है, उसे धर्म कहते हैं। यह उत्तमक्षमादिरूप दश प्रकार का है तथा चारित्ररूप है। इससे स्वर्ग, चक्रवर्तिपद तथा तीर्थंकरपद प्राप्त होता है। अतः यह धर्म प्रशंसनीय है। कुमति, मिथ्यात्व, क्रोधलोभादि विकार तथा नानाविध दुःखों से यह धर्म प्राणियों को मुक्त करता है। इस जैनधर्म का सारे विश्व में विजय हो। मैं इसे नमस्कार करता हूँ।

धर्म की वंदना के अनन्तर मैं जिनेन्द्र के वचन की वन्दना करता हूँ। उसकी विजय हो। अमृत प्राणियों के शारीरिक दुःख नष्ट कर उन्हें पुष्ट करता है, तद्वत् यह जिनवचनामृत नरकादि महादुःखों से पीड़ित जीवों के दुःख दूर करके उन्हें सुख देता है। अतः यह जिनवचन अमृतोपम है। इन जिनेन्द्र वचनों की रचना गणधरों ने पूर्वापरविरोधरहित की है। यह जिनेन्द्रवचन द्रव्यार्थिकनय को गौणता देकर तथा पर्यायार्थिक नय को मुख्यत्व समर्पण करके ग्यारह

अंग, चौदह पूर्व तथा अंगबाह्यश्रुत का विशद तथा नाना भेदयुक्त वर्णन करता है। वस्तु के उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य स्वभाव का वर्णन करता है। इस प्रकार उत्तम गुणों से भूषित यह जिनवचन हमारा संसार से रक्षण करे।।२।।

भगवद्वचः स्तुत्वा तज्ज्ञानं स्तोतुं तदन्वित्याद्याह–

तदनु जयताज्जैनी वित्तिः प्रभंगतरंगिणी।
प्रभवविगमध्रौव्य - द्रव्यस्वभावविभाविनी।।
निरुपमसुखस्येदं द्वारं विघट्य निरर्गलं।
विगतरजसं मोक्षं देयान्निरत्ययमव्ययम्।।३।।

तस्माज्जिनेन्द्रवचननमस्कारादनु पश्चात्। जिनस्येयं जैनी वित्तिः केवलज्ञानम्। जयतात् मत्यादिज्ञानेभ्यः सर्वोत्कर्षेण वर्द्धताम्। कथम्भूतेत्याह–प्रभङ्गेत्यादि–प्रभङ्गतरङ्गिणी प्रकृष्टा प्रवृद्धा वा भङ्गाःस्यादस्ति स्यान्नास्तीत्यादयः त एव तरङ्गाः।। कल्लोलास्ते विद्यन्ते यस्याम्। ते हि सकलवस्तुगता ग्राह्यत्वेन तत्र वर्तन्ते, स्वरूपगतास्तु तादात्म्येनेति। पुनरपि कथम्भूतेत्याह–प्रभवेत्यादि प्रभव उत्पादः विगमो विनाशो ध्रौव्यं स्थैर्यं तान्येव द्रव्याणां स्वभावाः तान्विभावयति प्रकाशयति इत्येवंशीला। इदं भगवदादिचतुष्टयं संस्तुतं सत्किं कुर्यादित्याह देयादित्यादि। देयात्कं मोक्षम्। किं कृत्वा विघट्य। किं तत् ? द्वारं। कस्य ? निरुपमसुखस्य उपमायाः निष्क्रान्तं निरुपमं तच्च तत्सुखं च अनन्तसुखम्। तस्य यद्द्वारं पिधायकं कपाटसम्पुटस्थानीयं मोहनीयं कर्म तद्विघट्य वियोज्य। कथं विघट्य ? निरर्गलं अर्गला अन्तरायं तस्याः निष्क्रान्तं यथाभवत्येवं विघट्य। विघटितमपि हि द्वारं अर्गलासद्भावे नेष्टप्रदेशे प्रवेष्टुं प्रयच्छति। कथम्भूतं मोक्षं ? विगतरजसं रजो ज्ञानदृगावरणे सकलकर्माणि वा, विगतं विनष्टं रजो यत्र। निरत्ययं अत्ययो व्याधिः जरामरणे वा ततो निष्क्रान्तम् । अव्ययं अविनश्वरम् ।।३।।

श्री गौतमगणधर जिनेश्वर के केवलज्ञान की स्तुति करते हैं–

अर्थ—श्री जिनेश्वर का केवलज्ञान मत्यादिज्ञानों में अत्यन्त श्रेष्ठ है। ऐसे केवलज्ञान की जगत् में निरन्तर विजय हो। गौतमगणधर ने इस ज्ञान को नदी का रूपक दिया है। नदी में अनेक तरंगे उत्पन्न होती हैं। इस केवलज्ञाननदी में

भी 'स्यादस्ति, स्यान्नास्ति' आदि सात प्रकार की तरंगे उत्पन्न होती हैं। ये सात भंग वस्तु के सात धर्म हैं और वे केवलज्ञान से जाने जाते हैं। अतः यह केवलज्ञानरूपी नदी 'स्यादस्त्यादि' लहरों से युक्त हैं। ऐसा कहना अनुचित नहीं है। वस्तु में ये सात धर्म कथंचित् तादात्म्यस्वरूप में रहते हैं। उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य द्रव्य का स्वरूप है। यह केवलज्ञान ने कहा है। द्रव्य की नवीन अवस्था उत्पन्न होना उत्पाद है। द्रव्य की पूर्वावस्था नष्ट होना व्यय है तथा इन दोनों अवस्थाओं में द्रव्य स्थिर रहना ध्रौव्य है। ये तीन अवस्थाएँ जीवादि द्रव्यों की होती हैं और केवलज्ञान उन्हें स्पष्ट जानता है। गौतमगणेश्वर ने जिनेश्वर, तदुपदिष्ट जिनधर्म, उनके वचन और केवलज्ञान का वर्णन किया है, स्तुति की है। इस स्तुति से मुक्ति मिले, ऐसा अभिप्राय श्रीगौतमगणधर ने व्यक्त किया है। मोक्ष अनन्तसुखों का द्वार है। परन्तु मोहनीयादिकर्मरूपी किवाड़ों से वह बंद हो गया है। अन्तराय कर्मरूप अर्गला इस दरवाजे में लगी है और दरवाजा खुलने पर भी अन्तरायरूपी अर्गला जब तक अलग नहीं होती, तब तक वह दरवाजे के अंदर जाने में बाधा उत्पन्न करती है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण तथा अन्य अघातियाँ कर्म जब नष्ट होते हैं, तब मोक्ष प्राप्त होता है। यह मोक्ष रोगरहित, जरामरणरहित तथा अविनाशी है। उपर्युक्त चार पदार्थों के स्तवन करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है।।३।।

अर्हत्सिद्धाचार्यो-पाध्यायेभ्यस्तथा च साधुभ्यः।
सर्वजगद्वंद्येभ्यो, नमोऽस्तु सर्वत्र सर्वेभ्यः।।४।।

अर्हत्सिद्धेत्यादि—अर्हन्तश्च सिद्धाश्च आचार्याश्च उपाध्यायाश्च तेभ्यो नमोऽस्तु नमस्कारो भवतु। तथा च तथैव साधुभ्यो नमोऽस्तु। कथम्भूतेभ्यः? सर्वजगद्वन्द्येभ्यः सर्वाणि च तानि जगन्ति च त्रयो लोकास्तेषां वन्द्यास्तेभ्यः। किं नियते क्षेत्रे नियतेभ्य इत्याह सर्वत्र सर्वेभ्यः।।४।।

पञ्चपरमेष्ठिनः सामान्येन नमस्कृत्य मोहादीत्यादिना अर्हतः पुनर्विशेषतो नमस्करोति। तेषां धर्मोपदेष्टृ-त्वेनोपकारकरत्वात्।।

अर्थ—जो समस्त त्रैलोक्य से वंदनीय है, ढाई द्वीपों के सर्व क्षेत्रों में हैं, ऐसे सर्व अर्हन्, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु पंचपरमेष्ठियों को मेरा

नमस्कार हो।।४।।

अरहंत भव्यों को उपदेश देकर उपकार करते हैं। अतः गौतम गणधर उन्हें पुनः विशेषतया नमस्कार करते हैं।

मोहादिसर्वदोषारि-घातकेभ्यः सदा हतरजोभ्यः।
विरहितरहस्कृतेभ्यः पूजार्हेभ्यो नमोऽर्हद्भ्यः।।५।।

मोहो मोहनीयं स आदिर्येषां क्षुधादीनां ते च ते सर्वे दोषाश्च त एवारयोऽरिकार्यकारित्वा। यथैव ह्यरयो दुःखदा एवमेतेऽपि। तेषां घातकेभ्यः। सदा हतरजोभ्यः सदा सर्वकालं हते विनाशिते रजसी ज्ञानदृगावरणे यैः। विरहितरहस्कृतेभ्यः रहस्कृतमन्तरायो विरहितं स्फेटितं रहस्कृतं यैः। पूजार्हेभ्य इन्द्राद्युपनीतामतिशयवतीं पूजामर्हन्तीति पूजार्हास्तेभ्यो नमोऽर्हद्भ्यः।।५।।

अर्थ—मोहनीय कर्म तथा क्षुधा, पिपासा, वृद्धावस्था आदि अठारह दोष शत्रु के समान जगत् के जीवों को दुःख देते हैं। अर्हत्परमेष्ठी ने इन मोहादि शत्रुओं का नाश किया है।

अरहंतों ने ज्ञानावरण, दर्शनावरण कर्मो का भी नाश किया है। इन दो कर्मों को 'रज' कहते हैं। रहस् अर्थात् अन्तराय कर्म का भी अरहंत ने नाश किया है। इस तरह मोहनीयादि चार घातियाँ कर्मो का नाश अरिहंतों ने किया है।

देवादिकों के द्वारा पूज्य होने से उनका अर्हन् नाम भी सार्थक है। ये सारे गुण जिनमें हैं, ऐसे भगवान् अर्हन्त को मैं नमस्कार करता हूँ।।५।।

एवमर्हतो वन्दित्वा तद्धर्मं वन्दमानः क्षान्त्यार्जवादीत्याद्याह–

क्षान्त्यार्जवादिगुणगण-सुसाधनं सकललोकहितहेतुं।
शुभधामनि धातारं, वन्दे धर्मं जिनेन्द्रोक्तम्।।६।।

क्षान्त्यार्जवादीत्याह–जिनेन्द्रोक्तं जिनेन्द्रप्रतिपादितम्। धर्मं उत्तमक्षमादिलक्षणं चारित्ररूपं वा वन्दे। कथम्भूतमित्याह–क्षान्तीत्यादि क्षान्तिः क्षमा, आर्जवमवक्रता ते आदिर्येषाम् । आदिशब्देन मार्दवशौच-सत्यसंयमतपस्त्यागाकिञ्चन्यब्रह्मचर्याणि गृह्यन्ते। ते च ते गुणाश्च तेषां गणः समूहः सुशोभनं साधनं यस्य स तथोक्तस्तम्। ननु चारित्रलक्षण-धर्मस्य क्षान्त्यादिसुसाधनत्वं युक्तम्। न पुनः उत्तम–क्षमादिलक्षणं तस्यैव

तद्धेतुत्वविरोधात् इति चेत् न द्रव्यरूपाणां तेषां भावरूपक्षमादिहेतुत्वे, भावरूपाणां च द्रव्यरूपक्षमादिहेतुत्वे, विरोधासम्भवात्। पुनरपि कथम्भूतम्? सकललोकहितहेतुं सकलाश्च ते लोकाश्च प्राणिनः तेभ्यो हितं सुखं तद्धेतुश्च तस्य हेतुस्तम्। शुभधामनि धातारं शुभं च तद्धाम च निर्वाणं तत्र धातारं स्थापयितारम्।।६।।

अरिहंत को नमस्कार कर जिनधर्म को श्रीगौतमगणधरदेव वंदन करते हैं–

अर्थ—श्रीजिनेश्वरों ने उत्तम क्षमादिरूप किंवा चारित्ररूप धर्म का भव्यों के लिए उपदेश दिया है। इस धर्म को मैं भक्ति से नमन करता हूँ। यह धर्म प्राणिमात्र को दुःख से दूर कर उनका हित करता है तथा उन्हें अनंतसुख देता है। अत्यन्त शुभस्थान की—मोक्ष की प्राप्ति करा देता है। चारित्रधर्म की पूर्णता होने के लिए उत्तम क्षमादिकारणों की आवश्यकता होती है।।६।।

प्रश्न—क्षमादिस्वरूप धर्मों के लिए क्षमादि कारणों की ही आवश्यकता लगती है, वह समझ में नहीं आता है। क्षमादिरूप धर्म को कारण और उसी को कार्य मानना संभवनीय नहीं है। एक ही वस्तु कारण–कार्य दोनों रूप होना संभवनीय नहीं लगता।

उत्तर—भावस्वरूप क्षमादि धर्मों का द्रव्यरूपी उत्तमक्षमादि धर्म कारण है। इस रीति से मानने पर विरोध नष्ट होता है। अन्तःकरण में क्षमा होने पर अपने मुख पर क्रोध से होने वाला विकार दृष्टिगोचर नहीं होगा। बाह्यशान्ति से अन्तःशान्ति का अनुमान किया जाता है। तब बाह्यशान्ति अन्तःशान्ति को पहचानने के लिए कारण होती है तथा अन्तःशान्ति के बिना यथार्थ बाह्य क्षमादि शान्ति हो नहीं सकती। अतः वह बाह्यशान्ति का कारण है।।६।।

एवं जिनेन्द्रोक्तं धर्मं स्तुत्वा तद्वचनं स्तोतुमाह–

मिथ्याज्ञानतमोवृत-लोकैकज्योतिरमितगमयोगि।
सांगोपांगमजेयं, जैनं वचनं सदा वन्दे।।७।।

मिथ्याज्ञानेत्यादि–मिथ्याज्ञानं विपरीतज्ञानम्। तदेव तमः तेन वृतः प्रच्छादितः स चासौ लोकश्च तस्यैकमद्वितीयं ज्योतिः जीवाद्यशेषतत्त्व-प्रकाशकत्वात्। अमितगमयोगि अमितोऽपरिमितः असङ्ख्यातः स चासौ गमश्च अशेषार्थविषयं श्रुतज्ञानं तेन योगः सम्बन्धः कार्यकारण-

भावलक्षणः, श्रुतस्य तज्जनकत्वात्। यदि वा अमितगमोऽनन्तावबोधः केवलज्ञानं तेन योगस्तस्य तज्जन्यत्वात् सोऽस्यास्तीति तद्योगी। साङ्गोपाङ्गं अङ्गानि आचारादीनि उपाङ्गानि पूर्ववस्तुप्रभृतीनि सह तैर्वर्तते इति साङ्गोपाङ्गम्। न जीयते एकान्तवादिभिरिति अजेयम्। शक्यार्थस्य अविवक्षितत्वात् अजय्यमिति न भवति। तदेवंविधं जैनं वचनं सदा वन्दे जिनस्येदं जैनमित्यनेनेश्वरादिवचनव्यवच्छेदः। सदा इत्यनेन नियतकालविषयस्तुति–व्युदासः।।७।।

अर्थ—जिनेश्वर के वचन विपरीतज्ञानरूपी अंधकार से आच्छादित हुए जगत को प्रकाशित करने के लिए अनुपम प्रकाश के समान है क्योंकि वह संपूर्ण जीवादि पदार्थों का स्पष्ट विवेचन करता है। यह उनका वचन श्रुतज्ञान से उत्पन्न हुआ है। अर्थात् पूर्व में जिनेन्द्र भगवान् श्रुतज्ञान से पदार्थों का स्वरूप परोक्षरूप से जानते थे। उस समय उनको श्रुतज्ञान था। वे श्रुतकेवली थे। तदनंतर वे श्रुतज्ञान की आराधना से केवली हो गये। इसलिए श्रुतज्ञान केवलज्ञान की उत्पत्ति में कारण हुआ। जिनेश्वर ने केवलज्ञान से भावश्रुत की रचना की। बारह अंग, चौदहपूर्व, वस्तु वगैरह श्रुतज्ञान के उपांग है। यह श्रुतज्ञान एकान्तवादियों से अजिंक्य है। जिनेश्वर प्रतिपादित यह श्रुतज्ञान सदा जयवंत रहे।।७।।

तात्पर्य श्रुतज्ञान तथा केवलज्ञान में अन्योन्य कार्यकारणता है। प्रथम श्रुतज्ञान केवलज्ञानोत्पत्ति में कारण होता है और वह केवलज्ञान उस श्रुत को प्रकाशित करता है। इस श्रुतज्ञान की आराधना से जीवों को केवलज्ञान प्राप्त होता है, वह भी केवलज्ञान से फिर श्रुतज्ञान की उत्पत्ति करता है। इस प्रकार श्रुतज्ञान और केवलज्ञान में कार्यकारण संबंध है। वह अनादिकाल से अनंतकाल तक अव्याहत चालू रहेगा।

भगवद्वचः स्तुत्वा तत्प्रतिमास्तद्वचनात्प्रसिद्धाः स्तोतुमाह–

भवनविमानज्योति-र्व्यंतरनरलोकविश्वचैत्यानि।
त्रिजगदभिवन्दितानां, वंदे त्रेधा जिनेन्द्राणां।।८।।

भवनेत्यादि–भवनानि च विमानानि च ज्योतिषश्च व्यन्तराश्च नराश्च भवनविमानज्योति–र्व्यन्तर-नरास्तेषां लोका निवासस्थानानि भवन-

विमानज्योतिर्व्यन्तरनरलोकाश्च तेषां विश्वचैत्यानि। सर्वप्रतिमाः। केषां? जिनेश्वराणाम्। कथम्भूतानाम् ? त्रिजगदभिवन्दितानाम्। त्रिलोकाभिस्तुतानाम् । त्रेधा मनोवाक्कायैः वन्दे।।८।।

भगवद्वचनस्तवन के अनन्तर उनकी प्रतिमाओं की स्तुति श्री गौतमगणधर करते हैं–

अर्थ—भवनवासी, सौधर्मादि सर्वार्थसिद्धयन्त विमानसमूह, ज्योतिष्क, व्यन्तर व मनुष्यक्षेत्र में जिनेश्वरों के त्रैलोक्यवंदित सर्वकृत्रिम–अकृत्रिम जो असंख्य बिंब हैं, उन्हें मैं मन, वचन, काय से वन्दन करता हूँ।।८।।

एवं चैत्यान्यभिनुत्य चैत्यालयानभिनवितुं भुवनत्रयेऽपीत्याह–

भुवनत्रयेऽपि भुवन-त्रयाधिपाभ्यर्च्य-तीर्थकर्तृणाम्।
वन्दे भवाग्निशान्त्यै, विभवानामालयालीस्ताः।।९।।

भुवनत्रयेऽपीत्याह–आलयालीर्वन्दे। कस्मिन् ? भुवनत्रयेऽपि अपि आलयालीत्यस्यानन्तरं द्रष्टव्यः। न केवलं चैत्यानि किन्त्वालयालीरपि वन्दे। केषां ? भुवनत्रयाधिपाभ्यर्च्यतीर्थकर्तृणाम्। भुवनानां त्रयं तस्य अधिपाः स्वामिनः देवेन्द्रनरेन्द्रधरणेन्द्रास्तैरभ्यर्च्याः पूज्यास्ते च ते तीर्थकराश्च तेषाम्। विभवानां विनष्टसंसाराणाम्। आलयानां जिनगृहाणाम्। आल्यः पङ्क्तयस्ताः। भुवनत्रयसम्बन्धित्वेन प्रसिद्धाः। किमर्थं वन्दे ? भवाग्निशान्त्यै भवः संसारः स एवाग्निः बहुप्रकारदुःखसन्तापहेतुत्वात्। तस्य शान्तिःशमनं विध्यापनं विनाशस्तस्यै।।९।।

अब चैत्यालयों की वंदना करते हैं–

अर्थ—इस त्रैलोक्य में तीन लोकों के नाथ, देवेन्द्र, चक्रवर्ती तथा धरणेन्द्रों से पूजनीय तथा संसाररहित तीर्थंकरों के असंख्य जिनमंदिर हैं, उन्हें मैं दुःखसंताप उत्पन्न करने वाले संसाराग्नि की शान्ति के लिए वन्दन करता हूँ।।९।।

इति पंचमहापुरुषाः, प्रणुता जिनधर्म-वचन-चैत्यानि।
चैत्यालयाश्च विमलां, दिशन्तु बोधिं बुधजनेष्टां।।१०।।

इतीत्यादिना स्तुत्यर्थमुपसंहृत्य स्तोता स्तुतेःफलं याचते। इत्येवमुक्तप्रकारेण। पञ्चमहा–पुरुषाः पञ्चपरमेष्ठिनः। प्रणुताः स्तुताः।

न केवलमेते जिनधर्मवचनचैत्यानि चैत्यालयाश्च। ते सर्वे प्रणुताः सन्तः किं कुर्वन्तु ? दिशन्तु प्रयच्छन्तु। बोधिं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रप्राप्तिम्। किंविशिष्टाम्। विमलां क्षायिकीम्। पुनरपि किंविशिष्टाम्? बुधजनेष्टाम् बुधजना गणधरदेवादयस्तेषामिष्टा-मभिप्रेताम् ।।१०।।

अब श्री गौतमगणधर स्तुतिफल की याचना करते हैं—

अर्थ—उपर्युक्त पंचपरमेष्ठी, जिनधर्म, जिनवाणी, जिनप्रतिमा और जिनमंदिर इनका मैंने स्तवन किया है। वे मुझे गणधरादि महर्षियों को प्रिय क्षायिक समाधि—रत्नत्रय प्राप्त करा दे।।१०।।

अकृतानि कृतानि चाप्रमेय-द्युतिमन्तिद्युतिमत्सु मन्दिरेषु।
मनुजामरपूजितानि वंदे प्रतिबिम्बानि जगत्त्रये जिनानाम्।।११।।

इदानीं कृत्रिमाकृत्रिमधर्मोपेततया जिनप्रतिमाः स्तोतुमकृतानीत्याद्याह उपस्कन्धकच्छन्दः। वन्दे कानि? प्रतिबिम्बानि। केषाम् ? जिनानामर्हताम्। क्व? जगत्त्रये। द्युतिमत्सु मन्दिरेषु त्रिभुवने प्रचुर प्रभासमन्वित–चैत्यालयेषु स्थितानि। कथम्भूतानि? अकृतानि बुद्धिमन्निमित्तव्या–पाराजन्यानि। कृतानि च तद्व्यापारजनितानि च। अप्रमेयद्युतिमन्ति प्रचुरताप्रभायुक्तानि। मनुजामरपूजितानि इन्द्रचक्रवर्त्यादिलोकपूजितानि।।११।।

अब स्तुतिकार कृत्रिम तथा अकृत्रिम जिनप्रतिमाओं की स्तुति करते हैं–

अर्थ—इस त्रैलोक्य में अतिशय कान्तियुक्त कृत्रिम तथा अकृत्रिम जिनमंदिरों में अनुपम तेजोयुक्त कृत्रिम व अकृत्रिम जिनप्रतिमाएँ हैं, जिनकी मनुष्य और सुरासुर पूजा करते हैं, उन्हें मैं वन्दन करता हूँ।।११।।

द्युतिमंडलभासुरांगयष्टीः, प्रतिमा अप्रतिमा जिनोत्तमानाम्।
भुवनेषु विभूतये प्रवृत्ता, वपुषा प्राञ्जलिरस्मि वन्दमानः।।१२।।

काः ? प्रतिमाः। किंविशिष्टाः ? अप्रतिमाः अनुपमाः । केन व पुषा तेजसा स्वरूपेण वा। पुनरपि कथम्भूताः? द्युतिमण्डलभासुराङ्गयष्टीः द्युतिमण्डलं प्रभामण्डलं तेन भासुरा दीप्ता अङ्गयष्टिर्यासां यष्टिरिव यष्टिः संसारार्णवे पततामवष्टम्भहेतुत्वात्। अङ्गमेवयष्टिः। भुवनेषु त्रिषु प्रवृत्ताः प्रसृताः। जिनोत्तमानामर्हताम्। किमर्थं ता वन्दमानः प्राञ्जलिरस्मि भूतये। अर्हदादिविशिष्टपदप्राप्तये। अथवा उत्कृष्टपुरुषार्थवती विशिष्टा

भूतिः, विशिष्टेषु वरप्रदेशेषु भूतिः प्रादुर्भावो यस्याः सकाशात् असौ विभूतिःपुण्यप्राप्तिः तस्यै।।१२।।

अर्थ—कान्तिमण्डल से जिनके देह चमकते हैं, ऐसे तीर्थंकरों के उपमारहित जिनबिंब इस त्रैलोक्य में असंख्य हैं। मैं उन जिनेश्वरों के सर्व बिम्बों को दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार करता हूँ। अरिहंत, सिद्ध आदि परमेष्ठियों की पदवी मुझे प्राप्त हो, ऐसी मेरी चाह है।।१२।।

विगतायुधविक्रियाविभूषाः, प्रकृतिस्थाः कृतिनां जिनेश्वराणाम्।
प्रतिमाः प्रतिमागृहेषु कांत्या- प्रतिमा कल्मषशान्तयेऽभिवन्दे।।१३।।

विगतायुधेत्यादि। अभिवन्दे अभिमुखीभूय स्तुवे। काः? प्रतिमाः किंविशिष्टा? अप्रतिमा अतुल्याः। कया? कान्त्या। क्व व्यवस्थिताः? प्रतिमागृहेषु चैत्यालयेषु। पुनरपि कथम्भूताः? विगतायुधविक्रियाविभूषा आयुधं प्रहरणं, विक्रिया विकारः विविधा विशिष्टा वा भूषा अलङ्कारो विगता एता यासु। इत्थम्भूताश्च ताः प्रकृतिस्थाः स्वरूपस्थाः। केषां प्रतिमाः? जिनेश्वराणाम्। किंविशिष्टानाम्? कृतिनां कृतं पुण्यं शुभायुर्नामगोत्रलक्षणं विद्यते येषां ते कृतिनस्तेषाम्। किमर्थमभिवन्दे? कल्मषशान्तये कल्मषं पापं तस्य शान्तये विनाशाय।।१३।।

अर्थ—कृत–पुण्य अर्थात् शुभ आयु, शुभ नाम तथा शुभ गोत्रादि पुण्यप्रकृतियों का उदय जिनको हैं, ऐसे जिनेश्वरों की जिनप्रतिमाएँ जिनचैत्यालयों में हैं, उनकी अद्वितीय कान्ति हैं। जिनेश्वरों का जैसा रूप था, वैसा इन प्रतिमाओं का रूप है। ये प्रतिमाएँ शस्त्रास्त्रों से रहित हैं, भूषणों से रहित तथा निर्विकार सर्वाङ्ग में शान्ति को धारण करने वाली हैं। मेरा पाप नष्ट होने के लिए मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ।।१३।।

कथयन्ति कषायमुक्तिलक्ष्मीं, परया शान्ततया भवान्तकानाम्।
प्रणमाम्यभिरूपमूर्तिमन्ति, प्रतिरूपाणि विशुद्धये जिनानाम्।।१४।।

कथयन्तीत्यादि। प्रणमामि कानि? प्रतिरूपाणि प्रतिबिम्बानि। कथम्भूतानि? अभिरूपमूर्ति–मन्ति अभि समन्तात् रूपं यस्याः सा चासौ मूर्तिश्च स्वरूपं विद्यते येषां ते। पुनरपि कथम्भूतानि? कथयन्ति शंसन्ति। कां? कषायमुक्तिलक्ष्मीम् कषायाणां मुक्तिरभावस्तस्या लक्ष्मीः सम्पत्तिः।

तस्यां वा सत्यां लक्ष्मीरन्तरङ्गा बहिरङ्गा च विभूतिः। कया? परया शान्ततया परमोपशान्त्या मूर्त्या। केषां प्रतिरूपाणि? जिनानाम्। किंविशिष्टानाम् ? भवान्तकानां भवःसंसारस्तस्य अन्तका विनाशकास्तेषाम्। किमर्थं प्रणमामि? विशुद्धये कर्ममलप्रक्षालनाय।।१४।।

अर्थ—श्रीजिनेश्वरों की ये प्रतिमाएँ अत्यन्त सुन्दर हैं। अतिशय शान्त स्वरूपमयी होने से कषायों का नाश होने से प्राप्त होने वाली अन्तरंग अनंतज्ञानादि लक्ष्मी तथा बहिरंग समवसरणादि लक्ष्मी का वर्णन करती हुई–सी दिखती हैं। संसार का जिन्होंने नाश किया है, ऐसे जिनेश्वरों की इन प्रतिमाओं को मेरे कर्मरूपी मल का क्षालन होने के लिए मैं भक्ति से नमस्कार करता हूँ।।१४।।

यदिदं मम सिद्धभक्तिनीतं, सुकृतं दुष्कृतवर्त्मरोधि तेन।
पटुना जिनधर्म एव भक्ति- र्भवताज्जन्मनि जन्मनि स्थिरा मे।।१५।।

यदिदमित्यादिना स्तोता स्तुतेः फलं प्रार्थयति। यत्सुकृतं पुण्यम्। सिद्धभक्तिनीतमिदम् सिद्धानां जगत्त्रये प्रसिद्धानामर्हत्प्रति बिम्बानां भक्तिस्तया नीतं प्रापितं उपढौकितं मम। कथम्भूतम्? दुष्कृतवर्त्मरोधि दुष्कृतं पापं तस्य वर्त्म मार्गः अप्रशस्तमनोवाक्कायस्तद्रुणद्धीत्येवं शीलम्। तेन सुकृतेन। पटुना समर्थेन। भक्तिः स्थिरा अविचला। मे जिनधर्म एवं भवतात् भवतु। कदा? जन्मनि जन्मनि भवे भवे।।१५।।

स्तोता स्तुतिफलप्राप्ति की याचना करता है–

अर्थ—त्रैलोक्यप्रसिद्ध श्रीजिनेश्वरों की प्रतिमाओं की भक्ति करने से प्राप्त हुआ जो पुण्य, वह पाप के कारणरूप मन, वचन और शरीर की प्रवृत्तियों को रोकता है। यह मेरा समर्थ पुण्य प्रत्येक जन्म में जिनधर्म में दृढ़ भक्ति के लिए कारण होवे।।१५।।

चतुर्णिकायामरसम्बन्धित्वेन तिर्यग्लोकसम्बन्धित्वेन च जिनचैत्यस्तवनार्थ–मर्हतामित्याह–

अर्हतां सर्वभावानां, दर्शनज्ञानसम्पदाम्।
कीर्तयिष्यामि चैत्यानि, यथाबुद्धि विशुद्धये।।१६।।

पथ्यावक्त्रच्छन्दः। कीर्तयिष्यामि स्तोष्ये। कानि? चैत्यानि। केषाम् ? अर्हताम् । किंविशिष्टानाम्? सर्वभावानां सर्वे निःशेषा भावाः

पदार्था विषया येषाम्। अथवा सर्वःपरिपूर्णो भावः चारित्रपरिणामः परमोदासीनलक्षणो येषाम्। पुनरपि कथम्भूतानाम् ? दर्शनज्ञानसम्पदाम् दर्शनज्ञानयोः क्षायिकरूपयोः सम्पद्येषाम् । तयोर्वा सतोः सम्पत् समवसरणादिविभूतिर्येषाम्। कथं तानि कीर्तयिष्यामि? यथास्वबुद्धि स्वमतिविभवानतिक्रमेण। किमर्थम् ? विशुद्धये कर्ममलप्रक्षालनाय।।१६।।

चतुर्णिकाय देवों के विमानादिकों में तथा मनुष्यक्षेत्र में स्थित जिनबिंबों का स्तोता स्तवन करता है–

अर्थ–संपूर्ण पदार्थ जिनके ज्ञान में प्रतिबिंबित हुए हैं अर्थात् ज्ञान के विषय हुए हैं अथवा सर्व–संपूर्ण–भाव–चारित्रपरिणाम जिनके हैं किंवा उदासीनतालक्षण चारित्रपरिणाम को–यथाख्यातचारित्र को जिन्होंने धारण किया है, केवलदर्शन और केवलज्ञान गुणों से पूर्ण, समवसरणादि बाह्य ऐश्वर्य से शोभायमान, ऐसी अर्हत्प्रतिमाओं का मेरे कर्मों का क्षय होने के लिए बुद्धि के अनुसार मैं वर्णन करता हूँ।।१६।।

श्रीमद्भावनवासस्थाः, स्वयंभासुरमूर्तयः।
वन्दिता नो विधेयासुः, प्रतिमाः परमां गतिम्।।१७।।

श्रीमदित्यादि। विधेयासुः क्रियासुः। काः? प्रतिमाः। काम् ? परमांगतिं मुक्तिम् । नोऽस्माकम्। किंविशिष्टाः? वन्दिताः सत्यः। पुनरपि किंवशिष्टाः? श्रीमद्भावनवासस्थाः भवनेषु भवा भावना देवास्तेषां वासाः, श्रीमन्तश्च ते भावनवासाश्च तत्र तिष्ठन्ति ते तत्स्थाः। स्वयंभासुरमूर्तयः स्वयं स्वभावेन भासुरा दीप्रा मूर्तिः स्वरूपं यासाम्।।

अर्थ—अतिशय शोभायमान जो भवनवासी देवों के स्थान हैं, उनमें स्वभावतः कान्तियुक्त मूर्तिस्वरूप जिनेश्वरों के बिंब हैं। उन्हें हम वन्दन करते हैं, वे हमें मोक्ष प्रदान करें।।१७।।

यावन्ति सन्ति लोकेऽस्मिन्नकृतानि कृतानि च।
तानि सर्वाणि चैत्यानि, वन्दे भूयांसि भूतये।।१८।।

यावन्तीत्यादि। यावन्ति यत्परिमाणानि। सन्ति विद्यन्ते। लोकेऽस्मिन् तिर्यग्लोके। अकृतानि कृतानि च तानि च तानि। भूयांसि प्रचुरतराणि चैत्यानि सर्वाणि वन्दे। भूतये विभूत्यर्थम्।।१८।।

अर्थ—इस मध्यलोक में जितने अकृत्रिम और कृत्रिम जिनबिंब हैं, उन सब जिनबिंबों को मैं मोक्षप्राप्ति के लिए वंदन करता हूँ।।१८।।

ये व्यन्तरविमानेषु, स्थेयांसः प्रतिमागृहाः।
ते च संख्यामतिक्रान्ताः, सन्तु नो दोषविच्छिदे।।१९।।

ये व्यन्तरेत्यादि। ये प्रतिमागृहाः प्रतिमाश्च गृहाश्च प्रतिमानां वा गृहाः। स्थेयांसः अतिशयेन स्थिराः सर्वदावस्थायिन। क्व ? व्यन्तर विमानेषु व्यन्तरान्विशेषेण मानयन्तीति व्यन्तरविमानानि व्यन्तर निवासास्तेषु। ते च तेऽपि सङ्ख्यामतिक्रान्ता असङ्ख्याताः। सन्तु भवन्तु। नोऽस्माकम्। दोषशान्तये रागाद्युपररमाय।।१९।।

अर्थ—व्यन्तर देवों के जहाँ निवासस्थान हैं, वहाँ असंख्यात जिनमंदिर और जिनप्रतिमाएँ हैं, वे प्रतिमाएँ तथा जिनमंदिर हमारे दोषों का विनाश करें।।१९।।

ज्योतिषामथ लोकस्य, भूतयेऽद्भुतसम्पदः।
गृहाः स्वयंभुवः सन्ति, विमानेषु नमामि तान्।।२०।।

ज्योतिषामित्यादि। अथ व्यन्तरविमानसम्बन्धिप्रतिमागृहस्तवनानन्तरं ज्योतिषां लोकस्य सम्बन्धिषु विमानेषु ये गृहाः सन्ति। कस्य? स्वयम्भुवोऽर्हतः। कथम्भूता अद्भुतसम्पदः आश्चर्यावहा सम्पद्विभूतिर्येषाम्। नमामि तान्। किमर्थम् ? विभूतये विभूतिनिमित्तम्।।

अर्थ—ज्योतिषी देवों के विमानों में आश्चर्यचकित वैभव को धारण करने वाले जो स्वयंभू जिनेश्वर के मंदिर हैं, उन्हें मैं ज्ञानादिगुणसंपदा प्राप्त होने के अभिप्राय से वंदन करता हूँ।।२०।।

वन्दे सुरतिरीटाग्र - मणिच्छायाभिषेचनम् ।
याः क्रमेणैव सेवंते, तदर्चाः सिद्धिलब्धये।।२१।।

वन्दे इत्यादि। वन्दे काः ? तदर्च्चाः ताश्च ता वैमानिकदेवसम्बन्धिन्यः अर्चाः प्रतिमाः किं कुर्वन्ति? याः सेवन्ते किं तत् ? सुरतिरीटाग्रम-णिच्छायाभिषेचनम् सुरा वैमानिकदेवा इह गृह्यन्ते ततोऽन्येषां प्रोगेवोक्तत्वात्। तेषां तिरीटानि मुकुटानि तेषामग्राणि तत्र मणयः, यदि वा अग्राः प्रधानभूताः ते च ते मणयश्च तेषां छाया दीप्त्यः ताभिरभिषेचनं स्नपनम्। कैः क्रमैरेव चरणैरेव सर्वदा तत्पादेषु प्रणत्तोत्तमाङ्गा इत्यर्थः। किमर्थं

वन्दे? सिद्धिलब्ध्ये मुक्तिप्राप्तये।।२१।।

अर्थ—स्वर्गवासी देव अपने मुकुटों के अग्रभाग में स्थित रत्नों की कान्ति से श्रीजिनेश्वरों की प्रतिमाओं के चरणों का अभिषेक करते हैं। उन जिनेश्वरप्रतिमाओं को मैं मोक्षप्राप्ति के लिए वंदन करता हूँ।।२१।।

इतीत्यादिना स्तोता स्तुतेः फलं प्रार्थयते–

इति स्तुतिपथातीत - श्रीभृतामर्हतां मम।
चैत्यानामस्तु संकीर्तिः, सर्वास्त्रवनिरोधिनी।।२२।।

इति इत्येवमुक्तप्रकारेण यासौ सङ्कीर्तिः सङ्कीर्तनं स्तुतिः। केषां? चैत्यानाम् । केषां सम्बन्धिनां चैत्यानाम् ? अर्हताम् । किंविशिष्टानाम्? स्तुतिपथातीतश्रीभृतां स्तुतेः पन्था मार्गः तमतीता सा चासौ श्रीश्च इन्द्रादिभिरपि या स्तोतुमशक्या अन्तरङ्गा बहिरङ्गा च श्रीः तां विभ्रति ये तेषां सङ्कीर्तिः मम सर्वास्त्रवनिरोधिनी अस्तु मुक्तिप्रदा भवत्वित्यर्थः।२२।।

पुनः स्तोता स्तुति की फलयाचना करता है–

अर्थ—जिनकी अन्तरंगज्ञानादिगुणरूप सम्पत्ति तथा बहिरंग समवसरणादि विभूतिरूप दोनों विभवों का वर्णन करना इन्द्रादिकों से भी असंभव है, ऐसे जिनेश्वरों की प्रतिमाओं की जो मैंने स्तुति की है, वह मेरे पापपुण्यरूप आस्रवों का निरोध करने में कारण हो अर्थात् इस स्तुति से मुझे मोक्ष प्राप्त हो।।२२।।

–स्कन्धच्छन्दः–

अर्हन्महानदस्य, त्रिभुवनभव्यजनतीर्थयात्रिकदुरित-
प्रक्षालनैककारण-मतिलौकिककुहकतीर्थमुत्तमतीर्थम्।।२३।।

अर्हन्महानदस्येत्यादि। उत्तमतीर्थं दुरितं व्यपहरत्विति सम्बन्धः। कस्य तीर्थं? अर्हन्महानदस्य महांश्चासौ। नदश्च महानदः। अर्हन्नेव महानदोऽर्हन्महानदः तस्य। पूर्वप्रवृत्तसरित्प्रवाहविपरीत–प्रवाहो हि नदो भवति। अर्हन्नपि पूर्वप्रवृत्तसंसारसरित्प्रवाहविपरीत–प्रवाहत्वान्नद इत्युच्यते। भगवता च नदेन तुल्योऽन्यो नदो न संभवति, ततो विशिष्टगुणोपेत्तत्वादिति महानद इत्युच्यते। तदैवास्य ततो विशिष्टगुणोपे-तत्वं तत्तीर्थस्येतरतीर्थाद्विशिष्टत्व–प्रदर्शनद्वारेण दर्शयति। उत्तमतीर्थम्—तीर्यते संसारसरिद्येन तत्तीर्थम्। द्वादशाङ्गचतुर्दशपूर्वादिलक्षणं भगवतो

मतम्। उत्तमं असाधारणं तच्च तत्तीर्थं च। कथमस्योत्तमत्वं इति चेत् अतिलौकिककुहकतीर्थं यतः। लोके भवं लौकिकं कुहकतीर्थम्। कुहकतीर्थं आश्चर्यप्रधानं दम्भप्रधानं च। अतिक्रान्तं लौकिककुहकतीर्थं येन। यत्तीर्थं भवति तत्तीर्थं यात्रिकाणां पृथिवीतलवर्तिनां कतिपयानां किल दुरितस्य शरीरमलस्य च प्रक्षालनकारणं भवति। इदं त्वर्हन्महानदस्योत्तमतीर्थं त्रिभुवनवर्तिनां भव्यजनानां तीर्थयात्रिकाणां दुरितस्य पापकर्मणः प्रक्षालने स्फेटने एकमद्वितीयं कारणम्।।२३।।

अर्थ—पूर्वदिशा की तरफ बहने वाली नदी के प्रवाह के विरुद्ध जिसका प्रवाह बहता है, उसे नद कहते हैं अर्थात् नद का प्रवाह पूर्वदिशा में बहता नहीं, वह पश्चिमाभिमुख बहता है। यहाँ स्तुतिकार ने नद का रूपक देकर अर्हत्परमेष्ठी का वर्णन किया है और वह पूर्णतया उचित है। संसाररूप नदी के प्रवाह के विरुद्ध अर्हन्नदका प्रवाह है, वह मोक्षमार्ग की तरफ जाता है। यह अरहंतरूप नद छोटा नहीं है। इस अर्हन्नद के समान कोई नद नहीं है। अतः यह विशिष्टगुणयुक्त होने से महानद है। नद में तीर्थ होते हैं, इसमें भी द्वादशाङ्ग और चौदहपूर्व स्वरूपी श्रुतज्ञान तीर्थ है। द्वादशांग और चौदह पूर्वों का वर्णन करने वाला अर्हन्मत ही इसमें तीर्थ है। जिसमें संसाररूपी नदी पार की जाती है, उसे तीर्थ कहते हैं और द्वादशांग तथा चौदहपूर्वरूप तीर्थ से संसार नदी तिरकर जनता पार हो जाती है।।२३।।

ननु तीर्थः प्रतिदिनं वहत्प्रवाहो भवति, स चात्र न भविष्यतीत्यत्राह–

लोकालोकसुतत्त्व-प्रत्यवबोधनसमर्थदिव्यज्ञान-
प्रत्यहवहत्प्रवाहं, व्रतशीलामलविशालकूलद्वितयम्।।२४।।

लोकालोकेत्यादि–लोकश्च अलोकश्च तयोः शोभनं तत्त्वं स्वरूपं। शोभनानि च जीवादीनि तत्त्वानि तस्य तेषां वा प्रतिसमन्तात्प्रत्येकं वा अवबोधनं परिच्छित्तिः तत्र समर्थानि दिव्यज्ञानानि च केवलज्ञानानि, मत्यादिसम्यग्ज्ञानानि वा, तान्येव प्रत्यहं प्रतिदिनं वहत्प्रवाहो यत्र। तर्हि कूलद्वयं तीर्थे भवति तदत्र न भविष्यतीत्याह—व्रतशीलामलविशालकूल-द्वितयम्–व्रतानि पञ्च, शीलानि अष्टादशसहस्रसङ्ख्यानि। तान्येव अमलं निर्दोषं, विशालं विस्तीर्णं कूलद्वितयं तटद्वयं यस्य।।२४।।

अन्यमतियों के माने हुये तीर्थ में स्नान करने से केवल शरीर का मल नष्ट होगा; परन्तु अरहंतरूपमहानद के तीर्थ में स्नान करने से पापरूपमल नष्ट होता है और आत्मा में पवित्रता आती है। अतः यह तीर्थ दांभिक लोगों के तीर्थ से अत्यन्त श्रेष्ठ है तथा असामान्य है। त्रैलोक्य के तीर्थयात्रा करने वाले सर्वभव्यों के पातक नष्ट करने में समर्थ होने से सर्वलौकिक–अन्यमतीय–तीर्थ इसका साम्य कदापि नहीं कर सकते हैं।

तीर्थ में से नित्य पानी बहता है, परन्तु यह अर्हन्महानदतीर्थ इस प्रकार का न होगा, इस शंका का निरसन स्तुतिकार करते हैं–

अर्थ—लौकिक—अन्यमतीयतीर्थ में से जलप्रवाह बहता हुआ देखा जाता है; परन्तु अर्हन्महानद के तीर्थ में से लोक तथा अलोक के स्वरूप जानने में समर्थ दिव्यज्ञानरूपी जल का प्रवाह सतत बहता है। मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय तथा केवलज्ञानरूपी जलप्रवाह सतत बहता है। इस अरिहंतरूपी तीर्थ के पंचव्रतसमूह और अट्ठारह हजार शीलरूपी दो सुंदर और स्वच्छ किनारे हैं। तात्पर्य—तीर्थ में जलप्रवाह बहता है। यहाँ भी जीवादि पदार्थों को जानने वाला ज्ञानरूपी जल प्रवाह है। तीर्थ को दो किनारों से शोभा आती है। अरिहंत के तीर्थ को व्रत और शील ये दो तट हैं। अतः अर्हत् तीर्थ सुन्दर दिखाई देता है। यही साम्य इन दो तीर्थों में हैं।।२४।।

ननु तीर्थं राजहंसैर्मनोज्ञघोषेण, सिकतासमूहेन च शोभां विभर्ति न चेदं तथा भविष्यतीत्याह—

शुक्लध्यानस्तिमित-स्थितराजद्राजहंसराजितमसकृत्।
स्वाध्यायमन्द्रघोषं, नानागुणसमितिगुप्तिसिकतासुभगम्।।२५।।

शुक्लध्यानेत्यादि—शुक्लध्यानान्येव स्तिमितं स्थिरं यथाभवत्येवं स्थिता राजन्तः शोभमाना राजहंसा गणधरदेवादयस्तैराजितं शोभितम्। असकृत् सर्वदा। स्वाध्यायमन्द्रघोषं शोभनो लाभपूजाख्यातिवर्जितः आध्यायः पाठः स्वाध्यायः स एव मन्द्रो मनोज्ञो घोषो नादो यत्र। नानागुणाश्चतुरशीतिलक्षगुणास्ते च समितयश्च पञ्च, गुप्तयश्च तिस्रः ता एव सिकतास्ताभिः सुभगं मनोज्ञम्।।२५।।

तीर्थ के दो किनारे राजहंस पक्षियों से, मधुर शब्दों से तथा बारीक बालुका

समूह से सुन्दर दिखते हैं। ऐसी शोभा इस अर्हन् तीर्थ में नहीं होगी, इस शंका का निरसन स्तुतिकार आगे के श्लोक में करते हैं।

अर्थ—इस अरहंतरूपी महानद–तीर्थ के दो तट शुक्लध्यानरूपी स्थिर तथा सुन्दर राजहंसों से अतिशय शोभा को प्राप्त हुए हैं। लाभ, आदर, सत्कार तथा ख्याति का उद्देश्य जिनके मन में नहीं है और जो आत्म–कल्याण का हेतु केवल धारण करके स्वाध्याय करते हैं, ऐसे मुनियों के मधुर शब्दों से इस तीर्थ के किनारे शोभा को प्राप्त हुए हैं। चौरासी लाख उत्तरगुण, पांच समिति, तीन गुप्तिरूपी सिकतासमूह के प्रदेश से इस तीर्थ के किनारे सुन्दर दिखते हैं।

अथोच्यते तीर्थमावर्तपुष्पितलतातरङ्गोपेतं भवति तदुपेतत्वं चात्र न भविष्यतीत्यत्राह–

क्षान्त्यावर्तसहस्रं, सर्वदया विकचकुसुमविलसल्लतिकम्।
दुःसहपरीषहाख्य - द्रुततररंगत्तरंगभंगुरनिकरम्।।२६।।

क्षान्त्यावर्तेत्यादि–क्षान्तयः क्षमाः सहिष्णुतास्ता एव आवर्त–सहस्राणि यत्र। सर्वदया–विकचकुसुमविलसल्लतिकम्—सर्वेषु प्राणिषु दया सर्वदया सैव विकचकुसुमविल–सल्लतिका यत्र विकचानि विकसितानि च तानि कुसुमानि च तैर्विलसन्त्यश्च ता लतिकाश्च। दुस्सहपरीषहाख्यद्रुततररङ्गत्तरङ्गभङ्गुरनिकरम्—दुःखेन महता कष्टेन सह्यन्ते इति दुःसहाः ते च ते परीषहाख्याश्च परीषह इत्याख्या सज्ञा येषां क्षुत्पिपासादीनां त एव द्रुततराः शीघ्रतराः रङ्गत्तरङ्गा रङ्गन्तस्तिर्यक्–प्रसरन्तस्ते च ते तरङ्गाश्च तेषां भङ्गुरो निकरः सङ्घातो यत्र।।२६।।

तीर्थ में भ्रम, पुष्पलता और तरंग होने से उसकी शोभा बढ़ती है। परन्तु अरिहंत के तीर्थ में इनका अभाव होगा, ऐसी शंका का परिहार–

अर्थ—यह अर्हत्तीर्थ क्षमारूपी सहस्रों भंवरों से युक्त हैं। सर्वप्राणियों पर दयारूपी पुष्पलतायें इस तीर्थ में हैं और ये पुष्पलताएँ विकसित पुष्पों से सुन्दर दिखती हैं। तथा जिनको सहन करना कठिन है, ऐसी क्षुधादि परिषहरूपी तरङ्गें बार–बार यहाँ उत्पन्न होती हैं तथा नष्ट होती हैं, ऐसा यह तीर्थ है।।२६।।

ननु फेनशैवलकर्दममकरविवर्जितं तीर्थं भवति सेव्यमिदं च तद्विवर्जितं न भविष्यतीत्याह–

व्यपगतकषायफेनं, रागद्वेषादिदोष-शैवलरहितम्।
अत्यस्तमोहकर्दम-मतिदूरनिरस्तमरणमकरप्रकरम्।।२७।।

व्यपगतेत्यादि-व्यपगतकषायफेनम्-कषाया एव फेनः स्वच्छात्मस्वरूपस्य कालुष्य-हेतुत्वात्। विशेषेण अपगतो नष्टः स यत्र यस्माद्वा। रागद्वेषादिदोषशैवलरहितम्। रागद्वेषौ आदिर्येषां मोहादीनां ते च ते दोषाश्च त एव शैवलो व्रतिनां पातनहेतुत्वात् । स्वच्छात्मस्वरूप-जलस्य कालुष्यकारणत्वाच्च, तै रहितम्। अत्यस्तमोहकर्दमम् अत्यस्तो मोह एव कर्दमः स्वपरपरिच्छेदकस्य जीवस्वरूपस्वच्छजलस्य व्यामोहलक्षणकालुष्य-कारणत्वात्। अत्यस्तो मोहकर्दमो येन स अत्यस्तमोहकर्दमः। अतिदूरनिरस्तमरणमकरप्रकरम् मकराणां प्रकरोऽ-विच्छिन्नसन्ततिविशेषो मरणान्येव मकरप्रकरः शरीराद्यपायहेतुत्वात् अतिदूरं निरस्तो निक्षिप्तो मरणमकरप्रकारो निर्वाणप्राप्तिहेतुत्वात् येन तत्तथोक्तम्।।२७।।

फेन, शैवाल, कीचड़ तथा मगरादि जलचरों का लौकिक तीर्थ में अभाव है। परन्तु उपर्युक्त पदार्थ अर्हत्तीर्थ में है या नहीं, इस प्रकार की शंका का समाधान-

अर्थ—इस अर्हत्तीर्थ में कषायरूपी फेन नहीं है। कारण यह कषायफेन आत्मा के निर्मलस्वरूप में निर्मलता नहीं रहने देता। अतः यह अर्हत्तीर्थ कषायफेन से रहित है। राग, द्वेष, लोभ, मोहादिक दोष रूपी शैवाल—काई भी इस अर्हत्तीर्थ में नहीं है। वह यदि होती तो यहाँ स्नान करने के लिये आने वाले मनुष्यों के चरण फिसल कर गिर जायेंगे। पानी में जब काई उत्पन्न होती है, तब उसकी स्वच्छता नष्ट होती है और वह कलुषित होता है। इस अर्हत्तीर्थ में रागद्वेषादिरूप काई यदि होती तो व्रती-लोगों का आत्मस्वरूप से पतन होता और आत्मस्वरूप का जल रागद्वेषादिरूप काई से बिगड़ जाता। इस अर्हत्तीर्थ में मोहरूपी कीचड़ नहीं है। यदि वह इसमें होता तो आत्मारूपी पानी गंदा हो जाता। पानी में जब कीचड़ प्रगट होती है, तब उसकी स्वच्छता रहती नहीं तथा उसमें स्थित पदार्थ भी स्पष्टता से दृग्गोचर नहीं होते। आत्मस्वरूप के जल में मोह की कीचड जब तक पैदा नहीं होती, तब तक वह स्वच्छ रहता है। तथा उसमें जो पदार्थ होते हैं वे भी स्वच्छ दिखते हैं। अर्थात् मोहरहित आत्मा

स्वस्वरूप तथा परस्वरूप अच्छी तरह देखता है। मोह के सद्भाव में वह स्वपरवस्तु स्वरूप देखने में असमर्थ होता है। यह अर्हत्तीर्थ जन्म-मरणरूपी मगरमच्छादि जलचरों से रहित ही है, जिनके अभाव में यह अर्हत्तीर्थ मोक्षप्राप्ति कराने में साधनभूत हुआ है।।२७।।

अथोच्यते तीर्थमनेकप्रकारपक्षिशब्दपुलिनजलावरोधजलनिर्गमधर्मैरुपेतां शोभां बिभर्ति, इदं तु तथा न भविष्यतीत्यत्राह-

ऋषिवृषभस्तुतिमन्द्रोद्रे-कितनिर्घोष-विविधविहगध्वानम्।
विविधतपोनिधिपुलिनं, सास्रवसंवरनिर्जरानिःस्रवणं।।२८।।

ऋषिवृषभेत्यादि-ऋषीणां वृभषा गणधरदेवादयः, स्तुतिस्वरूपाणि मनोज्ञानि उद्रेकितानि उत्कटशब्दितानि तानि च निर्घोषाश्च शास्त्रपाठाः स्तुतिमन्द्रोद्रेकितनिर्घोषाः, ऋषिवृषभाणां स्तुतिमन्द्रोद्रेकित-निर्घोषास्त एवं विविधा नानाप्रकारा विहगध्वानाः पक्षिशब्दा यत्र। विविधतपोनिधि-पुलिनम् विविधानि बहुप्रकाराणि तपांसि निधीयन्ते येषु ते विविधतपो-निधयो मुनिवरास्त एव पुलिनं संसारसरित्प्रवाहे प्रवहतां तदुत्तरणस्थानं यत्र। सास्रवसंवरण-निर्जरानिःस्रवणम् आस्रवणमास्रवः कर्मणामागमनम्, तस्य संवरणं निवारणं यथा प्रविशतो जलस्यावरोध इति। निर्जरा उपात्तकर्मणां निर्जरणं सैव निःस्रवणं यथा उपात्तजलस्य निर्गम इति। आस्रवसंवरणं च निर्जरानिस्रवणं च ताभ्यां सह वर्तते इति सास्रवसंवरण-निर्जरानिःस्रवणम्।।२८।।

लौकिकतीर्थ अनेक पक्षियों के शब्दों से शब्दमय होता है; वह बालुकामय प्रदेश, जलसंचय तथा जल निकलने के द्वार से युक्त होता है। परन्तु अर्हत्तीर्थ वैसा नहीं होता, इस शंका का उत्तर आचार्य देते हैं—

अर्थ—यह अर्हत्तीर्थ गणधरादि श्रेष्ठ मुनियों की मधुर स्तुति, तथा शास्त्रपठनरूप नाना पक्षियों के शब्दों से युक्त हैं। अन्यमतियों के तीर्थों पर नानाविध पक्षियों की ध्वनि सुनी जाती हैं। अर्हत्तीर्थ में स्तुति तथा शास्त्र पठन के शब्द सुने जाते हैं।

यदि नदी में बहते हुए मनुष्य को बालुका प्रदेश नदी से उत्तीर्ण होने का स्थान है, वैसे अर्हत्तीर्थ में अनेक प्रकार के अनशन, अवमोदर्य आदि तपश्चरण

करने वाले मुनिजन ही बालुका प्रदेशस्वरूप हैं और वे संसार–नदी के प्रवाह में बहते मनुष्य को पार लगाने के लिए बालुका प्रदेश के समान हैं। जैसे दूसरे तीर्थों में पानी अधिक नहीं आवे, इसलिए उसको प्रतिबंध करते हैं तथा अधिक पानी आ गया तो उसे निकालने की भी व्यवस्था की जाती है। वैसे अर्हत्तीर्थ भी कर्मों को जीव में आने में प्रतिबन्ध करता है और पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा करता है। अर्थात् पूर्वबद्ध कर्मों को वह आत्मा में से निकाल देता है। इस प्रकार इस अर्हत्तीर्थ का अन्यतीर्थों के साथ विलक्षण सादृश्य होने पर भी सर्व तीर्थों की अपेक्षा से यह अत्यन्त श्रेष्ठ है और यही प्राणिमात्रों का निःसंशय कल्याण करने वाला है।

गणधरचक्रधरेन्द्र- प्रभृतिमहाभव्यपुंडरीकैःपुरुषैः,
बहुभिः स्नातं भक्त्या, कलिकलुषमलापकर्षणार्थममेयम्।।२९।।

गणधरेत्यादि तदित्थम्भूतं तीर्थं पुरुषैर्बहुभिः स्नातं स्नान्त्यस्मिन्निति स्नातं स्नानस्थानम्। किंविशिष्टैस्तैः? गणधरचक्रधरेन्द्र-प्रभृतिमहाभव्य-पुण्डरीकैः गणधराश्च चक्रधराश्च इन्द्राश्च ते प्रभृतय आद्या येषां ते च ते महान्तश्च ते भव्यपुण्डरीकाश्च भव्यानां प्रधानाः यदि वा महाभव्याश्च ते पुण्डरीकाश्चेति विग्रहस्तैः। कया स्नातं? भक्त्या । किमर्थं? कलिकलुष-मलापकर्षणार्थम्। कलौ दुष्षमकाले कलुषं कर्म यदुपार्जितं तदेव मलं आत्मस्वरूपप्रच्छादकत्वात्तस्यापकर्षणार्थं स्फेटनार्थम् अमेयं महत्।।२९।।

अर्थ–भव्यों में अतिशय श्रेष्ठ ऐसे गणधर, चक्रधर, देवेन्द्र आदि बहुत पुरुषपुंगव जन्म जन्म में संचित किये कर्मरूपीमल का नाश करने के लिये इस महान् अर्हत्तीर्थ में भक्ति में स्नान करते हैं।

अवतीर्णवतः स्नातुं, ममापि दुस्तरसमस्तदुरितं दूरं।
व्यपहरतु परमपावन-मनन्यजय्यस्वभावभावगभीरं।।३०।।

तत्तीर्थं ममापि दुस्तरसमस्तदुरितं दुस्तरमनवगात्ह्यपारं (गाह्यपारं) तच्च तत् समस्तं च निरवशेषं दुरितं कर्म, दूरमपुनरावृत्तं यथा भवत्येवं। व्यपहरतु विशेषेण निर्मूलतोऽपहरतु स्फेटयतु। किंविशिष्टस्य मम? अवतीर्णवतः तीर्थे अनुप्रविष्टस्य। किमर्थम् ? स्नातुं कर्ममलं प्रक्षालयितुम्। किंविशिष्टं तीर्थम् ? परमपावनं परमं सर्वाधिनायकत्वात्। पावनं

सर्वदोषापहारकत्वात्। अनन्यजय्यस्वभाव-भावगभीरम्–अन्यैः परवादिभिः जेतुं शक्या अन्यजय्या न अन्यजय्या अनन्यजय्याः स्वभावाः स्वरूपाणि येषां ते च ते भावाश्च जीवादयः तैः गभीरमगाधम्।।३०।।

अर्थ—यह अर्हत्तीर्थ सर्व तीर्थों में श्रेष्ठ है तथा सर्वदोषों को नष्ट करता है। परवादीगण जिनका खण्डन नहीं कर सकते ऐसे अनेकान्तजीवादि पदार्थों से यह तीर्थ अतिशय गंभीर है। अर्थात् जीवादि पदार्थों का स्वभाव–वर्णन इस अर्हत्तीर्थ में ही निर्दोष लिखा हुआ दिखेगा। वह अन्यत्र नहीं दिखेगा। ऐसे इस पवित्र अर्हत्तीर्थ में स्नान के लिए उतरे हुए मेरे अनंत पातक नष्ट होवे।।३०।।

पृथ्वी छंद

अताम्रनयनोत्पलं, सकलकोपवह्नेर्जयात् ,
कटाक्षशरमोक्षहीन - मविकारतोद्रेकतः।।
विषादमदहानितः, प्रहसितायमानं सदा,
मुखं कथयतीव ते, हृदयशुद्धिमात्यन्तिकीम्।।३१।।

अताम्रेत्याह–जिनेन्द्र तव रूपं पुनात्विति सम्बन्धः। यत्र रूपे मुखं कथयतीव प्रकटयतीव। ते तव हृदयशुद्धिं हृदयं चित्तं ज्ञानमित्यर्थः तस्य शुद्धिं निर्मलतां प्रतिबन्धकहानिं किंविशिष्टां? आत्यन्तिकीम्–अन्तमतिक्रान्तः कालः अत्यन्तः तस्मिन्भवाम्। क्षायिकत्वे हि तद्विशुद्धेर्न कदाचिदन्तो भवतीति। कथम्भूतं मुखम् ? अताम्रनयनोत्पलम्–ईषत्ताम्रे अताम्रे ते च ते नयने च त एव उत्पले यत्र, उत्पल–शब्देनात्र उत्पलपत्रे गृह्येते समुदायेषु हि वृत्ताः शब्दा अवयवेषु अपि वर्तन्ते इत्यभिधानात्। कोपावेशात्ते ताम्रे भविष्यत इत्यत्राह–सकल कोपवह्नेर्जयात् सकलो अनन्तानुबन्ध्यादिभेदभिन्नः स चासौ कोप एव वहिनः सन्तापहेतुत्वात् तस्य जयात् क्षयकरणात्। पुनरपि कथम्भूतम् ? कटाक्षशरमोक्षहीनम्–कामोद्रेकादिष्टे प्राणिनि तिर्यग्दृष्टिपातः कटाक्षः स एव शरो मर्मवेधित्वात् तस्य मोक्षो मोचनं तेन हीनं कुतः? अविकारतोद्रेकतः अविकारता वीतरागता तस्या उद्रेकतः परमप्रकर्षं प्राप्तत्वात् । पुनरपि किंविशिष्टम्—प्रहसितायमानं सदा प्रहसितमिव आत्मानं आचरति इति प्रहसितायमानं सदा सर्वकालम्। कुतः? विषादमदहानितः विषादान्मदाच्च

कदाचिदप्रसन्नता मुखे भवति तु तयोरत्यन्तप्रक्षयतस्तन्मुखस्य सर्वदा प्रसन्नतोपपत्तेः प्रहसितायमानं सदेत्युच्यते।।३१।।

अब यहाँ से पाँच श्लोकों में जिनेश्वर के रूप का ग्रंथकार वर्णन करते हैं——

अर्थ——हे जिनेश ! आपके कमलदलतुल्य तथा किंचित् ताम्रनेत्र अतिशय मनोहर दिखते हैं। ये आपके क्रोध से ताम्र हुए होंगे ऐसा किसी के मन में प्रतिभास हो सकेगा। परन्तु वह प्रतिभास बिल्कुल अनुचित है; क्योंकि आपने अनन्तानुबंधी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान तथा संज्वलनरूप चार प्रकार के क्रोधरूप अग्नि का आपने नाश किया है। अतः क्रोध से आपके नेत्र लाल नहीं हुए हैं, ऐसा सिद्ध हो गया। अर्थात् आपके नेत्र नैसर्गिकता से ही किंचित् लाल हैं। हे प्रभो, आप कटाक्षरूप बाण से रहित हैं, क्योंकि आपमें राग–भाव बिलकुल नहीं है। आप में वीतरागता पूर्णतया प्रगट हुई है। राग और काम का उद्रेक होने से मनुष्य अपनी प्रियतमा को तिरछी नजर से देखता है। आपमें सराग भाव नहीं है, खेद और उन्मत्तपना उत्पन्न होने से मुख पर प्रसन्नता का भाव लुप्त होता है। परन्तु आप में ये दोनों भाव नहीं है। अतः आपका मुख सदैव प्रसन्न ही रहता है। विषाद और मद का आपने पूर्णनाश किया है अतः उनका लेश भी आपमें नहीं रहा है। अतः आपका मुख कभी भी अप्रसन्न नहीं रहता है। आपका अत्यन्त प्रसन्न मुख, आपका अन्तःकरण पूर्ण निर्मल हुआ है ऐसी सूचना करता है। तथा आपका ज्ञान पूर्ण दशा को प्राप्त हुआ है इसकी भी सूचना देता है।।३१।।

निराभरणभासुरं, विगतरागवेगोदया-
न्निरंबरमनोहरं, प्रकृतिरूपनिर्दोषतः।
निरायुधसुनिर्भयं, विगतहिंस्यहिंसाक्रमात्
निरामिषसुतृप्तिमद्विविधवेदनानां क्षयात्।।३२।।

पुनरपि कथम्भूतं रूपम्? निराभरणभासुरं आभरणेभ्यो निष्क्रान्तं निराभरणं। तच्च तद्भासुरं च भासनशीलं परमशोभासमन्वितम्। आभरणशोभामपि कुतस्तन्न करोति चेत् विगतरागवेगोदयात् रागस्य वेग आवेशस्तस्योदयो विशेषेण गतो नष्टः स चासौ रागवेगोदयश्च त स्मान्निरम्बरमनोहरम्। अंबरेभ्यो वस्त्रेभ्यो निःक्रान्तं निरम्बरं तच्च तन्मनोहरं

च मनोज्ञम्। कस्मात्तदम्बराण्यपि नादत्ते इत्याह प्रकृतिरूप–निर्दोषतः।

प्रकृतिरूपं सहजरूपं तत्र निर्दोषतो रागादिदोषासम्भवात् अनेन विशेषणद्वयेन श्वेतपटा भगवतः कुण्डलाद्याभरणं देवाङ्गवस्त्रादि परिधानं च परिकल्पयन्तः प्रत्युक्ताः। ननु निर्दोषत्वेऽपि लज्जाप्रच्छादनार्थं वस्त्रग्रहणं भगवतो न विरुद्धमित्यप्यनुपपन्नम् । लज्जाया एव दोषत्वात्। प्रक्षीणमोहे भगवति मोहविशेषात्मिकाया लज्जाया असम्भवाच्च। पुनरपि कथम्भूतं निरायुधसुनिर्भयम् आयुधं प्रहरणं तस्मान्निष्क्रान्तं तद्वा निष्क्रान्तं यस्मात् तन्निरायुधं इत्थम्भूतमपि सुनिर्भयम् । भयान्निष्क्रान्तं भयं वा निष्क्रान्तं यस्मात् निर्भयं सुष्ठु निर्भयं सुनिर्भयं। कुतः विगतहिंस्य-हिंसाक्रमात्। हिंस्यश्च हिंसा च तयोः क्रमोऽनुपरिपाटी। विशेषेण गतो नष्टः स चासौ हिंस्यहिंसाक्रमश्च वध्यवधकक्रमः। यदि हि भगवता कस्यचित् हिंस्यस्य हिंसा विधीयते तदा तेनापि भगवतः सा विधीयते इति हिंस्यहिंसाक्रमः स्यात्। न च भगवता कस्यचित्सा विधीयते परमकारुणिकत्वात्। पुनरपि किंविशिष्टं तव रूपम् ? निरामिषसुतृप्तिमत् आमिषादाहारात् निष्क्रान्तं निरामिषम्। तदित्थम्भूतमपि सुतृप्तिमत् शोभना इतरप्राणितृप्तिभ्यो विलक्षणा कवलाहाररहिता तृप्तिः सुतृप्तिः सा विद्यते यत्र तत्तद्वत् । कुतः विविधवेदनानां क्षयात् विविधा नानाप्रकाराः क्षुत्पिपासादिजनिता वेदनाः पीडाः तासां क्षयादभावात्।।३२।।

अर्थ——श्रीजिनेश्वर का रूप आभूषणों के बिना ही अत्यन्त सुन्दर दिखता है। श्री जिनेश्वर अपना देह अलंकारों से क्यों नहीं सजाते, इस प्रश्न का उत्तर यह है——उन्होंने रागभाव का मूलतः नाश किया है। मन में जब रागभाव उत्पन्न होता तब मानव अपना शरीर अलंकारों से भूषित करता है तथा अपने पास सुन्दर पदार्थ रखने की इच्छा उसे होती है। परन्तु जिन्होंने रागभाव का विनाश किया हैं उनके मन में ऐसे विचार कभी भी उत्पन्न नहीं होते। जिनेश्वर का स्वरूप वस्त्र के अभाव में भी अतिशय मनोहर दिखता है। उनको वस्त्रों की आवश्यकता ही नहीं थी। वे रागादि दोषों से रहित थे। अतः अपना शरीर कपड़ों से सजाने के स्वप्न में भी कभी उनको इच्छा नहीं थी। श्वेताम्बरजन भगवान जिनेश्वर को कुण्डल हार आदि आभरणों से तथा रेशमी वस्त्रों से

सजाते हैं। परन्तु यह उनका सजाने का कार्य अनुचित है। ये उपर्युक्त विवेचन से सिद्ध होता है। कदाचित् निर्दोष होते हुए भी भगवान् लज्जा से अपने अंग पर वस्त्र धारण करते हैं ऐसा कथन भी योग्य नहीं हैं। क्योंकि लज्जा भी दोष ही है। जिनेश्वर ने मोहकर्म का पूर्ण नाश किया है और लज्जा भी मोहकर्म का ही एक भेद है। अर्थात् वह भी मोह के नाश से ही नष्ट हो गई है। इसलिये लज्जा से जिनेश्वर वस्त्र धारण करते हैं, यह कहना भी योग्य नहीं है। जिनेश्वर ने अपने पास एक भी शस्त्र नहीं रखा है। अतएव वे निर्भय हैं। इसका कारण यह है कि वे किसी का भी घात नहीं करते हैं। यदि किसी का घात किया होता तो वह भी जिनेश्वर का घात करता। जिनेश्वर अतिशय दयालु होने से अपने पास शस्त्र रखने की उनको आवश्यकता ही नहीं है। तथा जिनेश्वर आहार भी ग्रहण नहीं करते हैं। तो भी उनको जो तृप्ति होती है वैसी अन्य को नहीं होती। उनको ऐसी लोकोत्तर तृप्ति होने का कारण यह है कि उन्होंने भूख, तृष्णा आदि दुःखों का पूर्ण विनाश किया है।।३२।।

मितस्थितनखांगजं, गतरजोमलस्पर्शनं
नवांबुरुहचन्दन - प्रतिमदिव्यगन्धोदयम् ।
रवीन्दुकुलिशादि - दिव्यबहुलक्षणालंकृतं
दिवाकरसहस्त्रभासुर - मपीक्षणानां प्रियम्।।३३।।

मितस्थितेत्यादि—अङ्गं शरीरं तत्र जाता अङ्गजाः केशाः। मिताः परिमिताः वृद्धिरहिताः स्थिता नखा अङ्गजाश्च यत्र। यत्समये हि केवलज्ञानमुत्पन्नं भगवतस्तत्समये यावत्परिमाणा नखाः केशाश्च अग्रेऽपि तत्परिमाणा एव तिष्ठन्ति। न पुनर्वर्द्धन्ते। गतरजोमलस्पर्शनम् । रजः पांसुः तदेव मलं तेन स्पर्शनं सम्बन्धो गतं नष्टं रजोमलस्पर्शनं यत्र। नवाम्बुरुहचन्दनप्रतिम–दिव्यगन्धोदयम्–नवं प्रत्यग्र विकसितं तच्च तदम्बुरुहं च, अम्बु पानीयं तत्र रोहति। प्रादुर्भवति इत्यम्बुरुहं कमलं तच्च चन्दनं च ताभ्यां प्रतिमः सदृशः दिव्यो अन्यजन्यशरीरासम्भवी यो गन्धस्तस्योदयः प्रादुर्भावो यत्र। रवीन्दुकुलिशादिपुण्यबहुलक्षणा–लङ्कृतम्–रविरादित्य इन्दुश्चन्द्रः कुलिशं वज्रमेतान्यादिर्येषां तानि च तानि पुण्यानि च प्रशस्तानि च बहूनि च अष्टोत्तरशतसङ्ख्यानि लक्षणानि च तैरलङ्कृतं भूषितम्। दिवाकरसहस्त्रभासुरमपीक्षणानां प्रियम्–दिवाकराणां सहस्त्रं, तद्वद्भासुरमपि

दीप्रमपि ईक्षणानां लोचनानां प्रियं वल्लभम्।।३३।।

अर्थ—जिनेश्वर को जब केवलज्ञान उत्पन्न होता है, तब उनके नख और केश जितने थे उतने ही वे रहते हैं ; उनकी वृद्धि आगे अधिक होती ही नहीं। इसका कारण यह है कि केवली भगवंत का शरीर परमौदारिक सप्तधातु रहित होता है। इसलिये नखों तथा केशों की बाढ़ होती नहीं। जिनेन्द्र के शरीर को धूली का स्पर्श होता ही नहीं। उनका शरीर दर्पणतुल्य निर्मल होता है। सद्यः विकसित कमल तथा नव चन्दन के समान उनके अंग का दिव्यगंध प्रकट होता है। किसी भी मनुष्य का शरीर प्रभु के शरीर समान सुगन्धित नहीं होता है। सूर्य, चन्द्र, वज्र आदिक दिव्य और उत्तम १००८ शुभ लक्षणों से प्रभु का देह अलङ्कृत होता है। तथा सहस्त्रों सूर्यों से भी अधिक दैदीप्यमान होकर भी प्रभु का देह लोगों के लोचनों को प्रिय आल्हादित करने वाला होता है।।३३।।

हितार्थपरिपंथिभिः प्रबलरागमोहादिभिः।
कलंकितमना जनो, यदभिवीक्ष्य शोशुद्धयते।।
सदाभिमुखमेव यज्जगति पश्यतां सर्वतः।
शरद्विमलचन्द्रमंडल - मिवोत्थितं दृश्यते।।३४।।

हितायेत्यादि—यद्रूपं अभि अभिमुखं समन्ताद्वा वीक्ष्य विलोक्य, शोशुध्यते अतिशयेन शुद्धो भवति। कोऽसौ ? जनः। कथम्भूतः? कलङ्कितमनाः कलङ्कितं मलिनीकृतं मनो यस्य। कैः ? प्रबलरागमोहादिभिः प्रकृष्टं बलं सामर्थ्यं येषां ते प्रबला रागश्च मोहश्च तौ आदिर्येषां द्वेषादीनां, प्रबलाश्च ते रागमोहादयश्च तैः। कथम्भूतैः? हितार्थपरिपन्थिभिः हितश्चासौ अर्थश्च मोक्षस्तस्य परिपन्थिनोऽपहारिणश्चौरा इत्यर्थः तैः। सदाभिमुखमेव यज्जगति पश्यतां सर्वतःसदा सर्वदा अभिमुखं एव सम्मुखेव कथं ? सर्वतः सर्वासु दिक्षु यद्रूपं दृश्यते। केषां ? पश्यताम्। क्व? जगति। किमिव? शरद्विमलचन्द्रमण्डलमिव शरदि शरत्काले विमलं विनष्टं घनपटलकलङ्कं तच्च तच्चन्द्रमण्डलं च चन्द्रबिम्बं तदिव उत्थितं उदितम्।।३४।।

अर्थ—जीवों का कल्याण मोक्षप्राप्ति से होता है परन्तु उसकी प्राप्ति को न होने देने वाले मोहादिक शत्रु–मनोविकार बहुत शक्तिशाली हैं। उनसे मलिन मन वाले लोग प्रभु का दर्शन करके अतिशय शुद्ध हो जाते हैं। जो जीव इस

जगत में सदा प्रभु का मुख देखते हैं। उनको वह प्रभु का मुख शरद् ऋतु के उदितनिर्मल पूर्ण चन्द्र मण्डल के समान दिखता है।।३४।।

तदेतदमरेश्वर - प्रचलमौलिमालामणि-
स्फुरत्किरणचुम्बनीय - चरणारविन्दद्वयम्।
पुनातु भगवज्जिनेन्द्र! तव रूपमन्धीकृतं।
जगत् सकलमन्यतीर्थगुरुरूपदोषोदयैः।।३५।।

तदेतदित्याह——तद्रूपमेतद्द्वयावर्णितप्रकारम्। अमराणामीश्वरा इन्द्राः यदि वा अमरा देवा ईश्वरा देवेन्द्रधरणेन्द्र-नरेन्द्राः तेषां प्रचला पुनः पुनः प्रणामपराः ते च ते मौलयश्च तेषां माला पङ्क्ति तत्र मणयः तेषां स्फुरन्तो दीप्रास्ते च ते किरणाश्च रश्मयः तैश्चुम्बनीयमाश्लेषणीयं चरणारविन्दे कमले तयोः द्वयं। पुनातु पवित्रीकरोतु। तव रूपं हि जिनेन्द्रभगवन् केवलज्ञान-सम्पन्न, यदि वा पूज्य। किं तत्पुनातु? जगत्सकलम्। किंविशिष्टं? अन्धीकृतं विवेकपराङ्मुखी-कृतम्। कैः? अन्यतीर्थगुरुरूपदोषोदयैः जैनतीर्थादन्यत्तीर्थं मतं येषां ते अन्यतीर्था आप्ताभिमानिनो मिथ्यादृष्टयः तेभ्यो गुरुरूपाणां बृहत्स्वरूपाणां दोषाणां रागद्वेषमोहानां ये उदयाः प्रादुर्भावास्तैः।।३५।।

अर्थ——हे केवलज्ञानसंपन्न इन्द्रादिपूज्य जिनेश्वर! यह संपूर्ण विश्व अन्यमतीय मिथ्यादृष्टि लोगों से फैलाये गये रागद्वेषमोहादिकविकारों से अन्ध बन गया है। इन्द्र, धरणेन्द्र, चक्रवर्ती नमस्कार करते समय उनके मुकुट स्थित मणियों से स्फुरित किरणों से हे प्रभो! आपके दोनों चरण कमल आश्लिष्ट हुए हैं। वे ऐसे मिथ्यामत से अंधे हुए सर्व जगत को पवित्र करे।

तात्पर्य——राग, द्वेष मोहादिविकारों का नाश होकर सर्वत्र जैनधर्म का प्रसार हो, जिससे जनता का सच्चा हित हो सके।।३५।।

—आलोचना या अंचलिका—

इच्छामि भन्ते! चेइयभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, अहलोयतिरियलोयउड्ढलोयम्मि किट्टिमा-किट्टिमाणि जाणि जिणचेइयाणि ताणि सव्वाणि तिसु वि लोएसु भवणवासियवाणविंतर-जोइसियकप्पवासियंति चउविहा देवा सपरिवारा दिव्वेण गन्धेण, दिव्वेण

पुप्फेण, दिव्वेण धूवेण, दिव्वेण चुण्णेण, दिव्वेण वासेण, दिव्वेण ण्हाणेण, णिच्चकालं अंचंति, पुज्जंति, वंदंति, णमंसंति अहमवि इह संतो तत्थ, संताइं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुण-सम्पत्ति होउ मज्झं।

अंचलिका की संस्कृत एवं हिन्दी टीका

अथ इच्छामि भंते भगवन् अहं इच्छामि अभिलषामि। किं कर्तुं ? चेइयभत्तिकाउस्सगो कओ तस्सालोचेउं चैत्यभक्तिकायोत्सर्गो यो मया कृतः तमालोचयितुम्। वर्तमानदोषनिराकरणार्थमित्यर्थः।

अहलोयतिरियलोये उड्ढलोयम्मि अधोलोकतिर्यक्लोकोर्ध्वलोकेषु। किट्टिमाकिट्टिमाणि कृत्रिमाकृत्रिमाणि। शाश्वताशाश्वतानि तानि यानि जिनचेइयाणि जिनचेइयाणि जिनचैत्यानि जिनप्रतिमाः यानि। तानि सर्वाणि तिसुवि लोएसु त्रिष्वपि लोकेषु। भवनवासियवाणविंतर-जोइसियकप्पवासियत्ति भवनवासिनोऽसुरादयः, वानव्यन्तरा वनोद्भवाः किंनरादयः, जोइसिय ज्योतिष्काः चन्द्रादयः, कप्पवासिय कल्पवासिनः सौधर्मादयः। इति चउव्विहा देवा चतुर्विधाश्च देवाश्चतुःप्रकारा देवाः अणिमाद्यष्टगुणोपेताः। कथम्भूताः सपरिवाराः पल्यादिसहिताः। दिव्वेहिं गंधेहिं दिव्यैः स्वर्गलोकोद्भवैः कुङ्कुमागुरुकर्पूरचन्दनादिद्रव्यैः। दिव्वेहिं पुप्फेहिं मंदारपारिजातसन्तानकादिकुसुमैः। दिव्वेहिं धूवेहिं दिव्यैर्धूपैः कृष्णागुरुदेवदारुचन्दना-दिसुगन्धद्रव्यसंजातैः। दिव्वेण चुण्णेण दिव्येन चूर्णेन। दिव्वेहिं वासेहिं दिव्यैर्वासैः कर्पूरादिकचूर्णैः। दिव्वेण ण्हाणेण दिव्येन स्नानेन क्षीरोदजलादिभिः। णिच्चकालं नित्यकालं सर्वकालं त्रिकालमित्यर्थः। अंचंति स्नपयंति। पुज्जंति पूजयन्ति। वंदंति स्तुवन्ति नमस्संति नमस्यन्ति पंचाङ्गप्रणामं कुर्वन्ति। अहमवि अहमपि इह संतो इह सन् अत्र क्षेत्रे वर्तमानः। तत्थ संताइं तत्र सन्ति पूर्वोक्तस्थानेषु वर्तमानानि। णिच्चकालं त्रिकालं अनवरतं च। अंचेमि अर्चामि। पूजेमि पूजयामि। वंदामि स्तौमि। णमंसामि नमस्यामि प्रणिपतामि। एवंकृते सति दुक्खक्खओ शारीरमानसदुःखक्षयः, कम्मक्खओ ज्ञानावरणा-

द्यष्टकर्मक्षयः, बोहिलाहो रत्नत्रयलाभः, सुगइगमणं मोक्षगमनं, समाहिमरणं रत्नत्रये निर्विघ्नतया अक्लीवमरणं, जिणगुणसंपत्ती जिनस्य गुणाः चतुस्त्रिंशदतिशया, अष्टमहाप्रातिहार्याणि अनन्तज्ञानादिचतुष्टयं चेत्यादयः सैव सम्पत्तिर्लक्ष्मीः। सा होउ मज्झं भवतु ममेति।।[१]

अंचलिका का अर्थ

इस प्रकार चैत्यभक्ति करने के बाद हे भगवन् ! मैंने चैत्यभक्ति का कायोत्सर्ग किया अब मैं आलोचना करने की इच्छा करता हूँ अर्थात् जो चैत्यभक्ति का कायोत्सर्ग किया है उसमें वर्तमान काल में जो दोष हुए हैं उनका निराकरण करने की मेरी इच्छा है। अर्थात् उन दोषों की मैं आलोचना करता हूँ। अधोलोक, ऊर्ध्वलोक तथा मध्यलोक में जो कृत्रिम तथा अकृत्रिम जिनमंदिर हैं, उन सर्व मंदिरों की चतुर्णिकाय देव, असुरादिक भवनवासी, किन्नरादिक व्यंतर, चंद्र–सूर्यादिक ज्योतिष्क तथा सौधर्मादिक कल्पवासी ये सब देव मिलकर परिवार के साथ अणिमादिक आठ गुणयुक्त होकर देवांगना आदि परिवार लेकर स्वर्गलोकों का कुंकुम, अगरु, कर्पूर, चन्दन आदि पदार्थ जिसमें मिलाये हैं ऐसे दिव्य गंध से, दिव्य पुष्पों से मंदार, पारिजात, संतानकादि दिव्यपुष्पों से, कृष्णागरु, देवदारु, चंदनादि सुगंध द्रव्यों से मिश्रित दिव्य धूप से पंचवर्णमयी माणिक्यचूर्ण से, दिव्य कर्पूरादिक वास से, कर्पूरादिक चूर्ण से, क्षीरसमुद्रादिक जलों से अभिषेक करना इत्यादिक से वे देवगण नित्यकाल अर्थात् त्रिकाल में आकर पूजते हैं, वंदन करते हैं, स्तुति करते हैं नमस्कार करते हैं। मैं भी यहाँ स्वकीय ग्रामादिक में निवास करता हुआ भी मानो ऊर्ध्वलोकादि में निवास करता हूँ। ऐसी भावना से नित्यकाल मैं त्रिकाल में अर्चन, पूजन, वंदन नमस्कार करता हूँ। जिससे मेरे दुःखों का क्षय होवे। ज्ञानावरणादिक आठ कर्मों का क्षय होवे, बोधिलाभ–रत्नत्रयलाभ होवे, सुगति में गमन होवे, रत्नत्रययुक्त निर्विघ्नता से समाधिमरण प्राप्त होवे, जिनगुणों की संपत्ति की प्राप्ति होवे अर्थात् मुझे चौंतीस अतिशय, अष्टमहाप्रातिहार्य, अनन्तज्ञानादिचतुष्टय आदि की प्राप्ति होवे, ऐसी मैं इच्छा करता हूँ।

इस प्रकार श्री गौतमस्वामी ने समवसरण में विराजमान श्री महावीर

१. सामायिक भाष्य पृ. १७४ से १७७ तक।

स्वामी की वन्दना करके नव देवताओं की वन्दना की है पुनः अकृत्रिम–कृत्रिम जिनप्रतिमा एवं जिनालयों की वन्दना की है। यह चैत्यभक्ति नाम से प्रसिद्ध है। हम सभी दिगम्बर जैन साधु–साध्वी प्रतिदिन त्रिकाल देववन्दना—सामायिक में इस भक्ति का पाठ करते हैं।

श्री चैत्यभक्ति प्रशस्ति

महाकल्पद्रुम वीर प्रभु, फल अचिन्त्य दातार।
महावीर भगवान को, नमूं अनन्तों बार।।१।।

वीर दिव्यध्वनि श्रवण कर, द्वादशांग करतार।
गौतम गणधर ग्रंथकृत्, नमूं उन्हें शत बार।।२।।

श्री वीरशासन प्रथित, कुंदकुंद आचार्य।
मूलसंघ में नाम से, कुंदकुंद आम्नाय।।३।।

गच्छ सरस्वती गण कहा, बलात्कार शुभ मान्य।
चारितचक्री प्रथम गुरु, शांतिसागराचार्य।।४।।

उनके पट्टाचार्य गुरु, वीरसागराचार्य।
महाव्रत के दातागुरु, नमूं उभय आचार्य।।५।।

वीर संवत् पच्चीस सौ, चालिस जग अभिवंद्य।
दूज कृष्ण वैशाख की, पूर्ण किया यह ग्रंथ।।६।।

अमृतवर्षाकारिणी, गौतमस्वामी वाणि।
अमृतपद देवे हमें, यह संकलिता वाणि।।७।।

जब तक जिनवर धर्म है, जग में सुखकर पूर्ण।
तब तक 'कृति' स्थायि हो, करे ज्ञानमति पूर्ण।।८।।

इति श्रीगौतमस्वामीकृत चैत्यभक्तिप्रशस्ति समाप्ता।

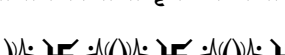

समवसरण वंदना

-गणिनी ज्ञानमती

दोहा– चिन्मय चिंतामणि प्रभो, गुण अनंत की खान।
समवसरण वैभव सकल, वह लवमात्र समान ।।१।।

–शंभुछंद–

जय जय तीर्थंकर क्षेमंकर, तुम धर्म चक्र के कर्ता हो।
जय जय अनंतदर्शन सुज्ञान, सुखवीर्य चतुष्टय भर्त्ता हो।।
जय जय अनंत गुण के धारी, प्रभु तुम उपदेश सभा न्यारी।
सुरपति की आज्ञा से धनपति, रचता है त्रिभुवन मनहारी।।२।।

प्रभु समवसरण गगनांगण में, बस अधर बना महिमाशाली।
यह इंद्र नीलमणि रचित गोल, आकार बना गुणमणिमाली।।
सीढ़ी इक एक हाथ ऊँची, चौड़ी सब बीस हजार बनी।
नर बाल वृद्ध लूले लंगड़े, चढ़ जाते सब अतिशायि घनी।।३।।

पहला परकोटा धूलिसाल, बहुवर्ण रत्न निर्मित सुंदर।
कहिं पद्मराग कहिं मरकतमणि, कहिं इन्द्रनीलमणि से मनहर।।
इसके अभ्यंतर चारों दिश, हैं मानस्तंभ बने ऊँचे।
ये बारह योजन से दिखते[1], जिनवर से द्विदश गुण ऊँचे।।४।।
इनमें चारों दिश जिनप्रतिमा उनको सुरपति नरपति यजते।
ये सार्थक नाम धरें दर्शन से, मानी मान गलित करते।।
इस समवसरण के चार कोट, अरु पाँच वेदिकायें ऊँची।
इनके अंतर में आठ भूमि फिर प्रभु की गंधकुटी ऊँची।५।।

इस धूलिसाल अभ्यंतर में है भूमि चैत्यप्रासाद प्रथम।
एकेक जैन मंदिर अंतर से, पाँच पाँच प्रासाद सुगम।।
चारों गलियों में उभय तरफ दो दोय नाट्याशालायें हैं।
अभिनय करतीं जिनगुण गातीं, सुर भवनवासि कन्यायें हैं।।६।।

फिर वेदी वेढ़ रही ऊँची, गोपुर द्वारों से युक्त वहाँ।
द्वारों पर मंगलद्रव्य निधी, ध्वज तोरण घंटा ध्वनी महा।।
फिर आगे खाई स्वच्छ नीर से, भरी दूसरी भूमी है।
फूले कुवलय कमलों से युत, हंसों के कलरव की ध्वनि है।।७।।

1. हरिवंश पुराण

फिर दूजी वेदी के आगे, तीजी है लताभूमि सुन्दर।
बहुरंग बिरंगे पुष्प खिले, जो पुष्पवृष्टि करते मनहर।।
फिर दूजा कोट बना स्वर्णिम, गोपुर द्वारों से मन हरता।
नवनिधि मंगल घट धूप घटों, युत में प्रवेश करती जनता।।८।।

आगे उद्यान भूमि चौथी, चारों दिश बने बगीचे हैं।
क्रम से अशोक वन सप्तपर्ण, चंपक अरु आम्र तरु के हैं।।
प्रत्येक दिशा में एक एक, तरु चैत्यवृक्ष अतिशय ऊँचे।
इनमें जिन प्रतिमा प्रातिहार्ययुत, चार चार मणिमय दीखें।।९।।

इसके आगे वेदी सुन्दर, फिर ध्वजाभूमि ध्वज से शोभे।
फिर रजतवर्णमय परकोटा, गोपुर द्वारों से युत शोभे।।
फिर कल्पवृक्ष भूमी छट्ठी, दशविध के कल्पवृक्ष इसमें।
प्रतिदिश सिद्धार्थ वृक्ष चारों हैं, सिद्धों की प्रतिमा उनमें।।१०।।

चौथी वेदी के बाद भवन, भूमी सप्तमि के उभय तरफ।
नव नव स्तूप रत्न निर्मित, उनमें जिनवर प्रतिमा सुखप्रद।।
परकोटा स्फटिकमयी चौथा, मरकत मणि गोपुर से सुन्दर।
उस आगे श्रीमंडप भूमी, बारह कोठों से जनमनहर।।११।।

फिर पंचम वेदी के आगे, त्रय कटनी सुन्दर दिखती हैं।
पहली कटनी पर यक्ष शीश पर, धर्मचक्र चारों दिश हैं।।
दूजी कटनी पर आठ महाध्वज, नवविधि मंगल द्रव्य धरे।
तीजी कटनी पर गंधकुटी पर, जिनवर दर्शन पाप हरें।।१२।।

जय जय जिनवर सिंहासन पर, चतुरंगुल अधर विराज रहे।
जय जय जिनवर की दिव्यध्वनी, सुनकर सब भविजन तृप्त भये।।
सब जातविरोधी प्राणीगण, आपस में मैत्री भाव धरें।
जो वंदे ध्यावें गुण गावें, वे ज्ञानमती कैवल्य करें।।१३।।

–दोहा–

चतुर्मुखी ब्रह्मा तुम्हीं, ज्ञान व्याप्त जग विष्णु।
देवों के भी देव हो, महादेव अरि जिष्णु।।१४।।

चैत्यवंदनाष्टक

(गणिनी ज्ञानमती विरचित)

त्रिभुवन के जितने चैत्यालय, अकृत्रिम उनको नित वंदूं।
भव भव के संचित पाप पुंज, उन सबको इक क्षण में खंडूं।।
असुरों के चौंसठ लाख नागसुर, के चौरासी लाख कहे।
वायुसुर के छ्यानवे लाख सुपरण के बाहत्तर लक्ष कहे।।१।।

विद्युत् अग्नी स्तनित उदधि, दिक् द्वीपकुमार भवनवासी।
इन छह में पृथक्-पृथक् जिनगृह, छीयत्तर लक्ष सुगुण-राशी।।
सब लक्ष बहत्तर सात कोटि, ये जिनगृह भवनालय सुर के।
ये अधोलोक के जिनमंदिर, नितप्रति वंदूं अंजलि करके।।२।।

इस मध्यलोक के पांच मेरु, के अस्सी तीस कुलाचल के।
रजताचल के इक सौ सत्तर, अस्सी हैं वक्षाराचल के।।
गजदंत गिरी के बीस भवन, जंबू शाल्मलि के दश मानें।
इष्वाकृति नग के चार चार, मनुजोत्तर के भी भव हानें।।३।।

अंजनगिरि के चउ दधिमुख के, सोलह रतिकर के बत्तिस हैं।
नंदीश्वर द्वीप जिनालय ये, बावन अतिशय गुणमंडित हैं।।
कुंडलगिरि रुचकगिरी के भी, हैं चार चार सब मिल करके।
ये चार शतक अट्ठावन हैं, जिनमंदिर मध्यलोक भर के।।४।।

व्यंतरवासी ज्योतिष सुर के, सब संख्यातीत जिनालय हैं।
इस ऊपर ऊर्ध्वलोक में भी, वैमानिक वंदित आलय हैं।।
सौधर्म स्वर्ग में जिनमंदिर, बत्तीस लाख शाश्वत मानो।
ईशान स्वर्ग में अट्ठाइस, हैं लाख जिनालय सरधानो।।५।।

सानत्कुमार में बारह लख, माहेन्द्र स्वर्ग में आठ लक्ष।
दिव ब्रह्मयुगल में चार लाख, लांतव युग में पच्चास सहस।।
चालिस हजार दिव शुक्र युगल में, छह हजार युग शतार में।
जिननिलय सात सौ आनत औ, प्राणत आरण अच्युत दिव में।।६।।

ग्रैवेयक तीन अधो में हैं, इक सौ ग्यारह मध्यम त्रय में।
हैं इक सौ सात तथा जिनगृह, हैं इक्यानवे ऊर्ध्व त्रय में।।
नव अनुदिश में नव जिनमंदिर, पंचानुत्तर में पांच कहें।
इन सबका वंदन करते ही, भविजन मनवांछित सिद्धि लहें।।७।।

तीनों लोकों के ये जिनगृह, सब आठ कोटि छप्पन सुलक्ष।
सत्तानवे सहस चार सौ औ, इक्यासी प्रमित कहे शाश्वत।।
नव सौ पच्चीस कोटि त्रेपन, हैं लाख सताइस सहस सही।
नव सौ अड़तालिस जिनप्रतिमा, प्रति जिनगृह इक सौ आठ कहीं।।८।।

सब जिनगृह में अनुपम शाश्वत, मानस्तंभादिक रचनायें।
वर्णन पढ़ते ही जन मन में, दर्शन की इच्छा प्रकटायें।।
जिनबिंब पांच शत धनुष तुंग, उन वीतराग छवि मनहारी।
मैं केवल "ज्ञानमती" हेतू, नित नमूँ जिनालय सुखकारी।।९।।

-दोहा-

त्रैकालिक कृत्रिम सभी, जिनप्रतिमा जिनधाम।
कहे अनंतानंत ही, तिन्हें अनंत प्रणाम।।१०।।